दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन

मुहम्मद अंसारुल्लाह

H
819.092
V 59 A

भारतीय साहित्य के

H
819.092
V59A

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोधन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ–रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली।

भारतीय साहित्य के निर्माता

दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन

लेखक

मुहम्मद अंसारुल्लाह

अनुवादक

जानकी प्रसाद शर्मा

साहित्य अकादेमी

Data Dayal Maharshi Shiv Brat Lal Verman : Hindi Translation by Janki Prasad Sharma of monograph in Urdu by Mohd. Ansarullah, Sahitya Akademi, New Delhi. (1995) Rs. 15/-.

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1995

Library IIAS, Shimla
H 819.092 V 59 A
00116042

H
819.092
V 59

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति' मंदिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23ए/44 एक्स.,
डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053
304 & 305 अन्ना सालई, तेनामपेट, मद्रास 600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग,
दादर, बम्बई 400 014
ए.डी.ए. रंगमंदिर, 109, जे.सी. मार्ग, बंगलौर 560 002

मूल्य : पन्द्रह रुपये

ISBN 81-7201-842-8

Indian Institute ...
116042
17/11/04
SHIMLA

लेज़र-सेट : कर्सर कम्प्यूटर डाटा सर्विसेज़, नई दिल्ली-110014
मुद्रक : सोनी प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

सूची

भूमिका

आत्म-परिचय

1. जन्म, ठाकुर, वंश 1
2. जन्म, नाम, मुखाकृति, स्वभाव, माता-पिता से लगाव, विवाह, रहन-सहन 4
3. शिक्षा, डॉक्टर ऑफ़ लाज़, अफ़वाह, ज्ञान में लीन, एक अलग राय 9
4. नौकरी, व्यवसाय, हेडमास्टरी 12
5. धार्मिक शिक्षा, ब्रह्म समाज, आर्य समाज, शालिग्राम जी, आर्य समाज में, महाशय, हरिद्वार में 14
6. उर्दू, आर्य गज़ट, अलगाव, संत मत, मूर्ति पूजा, साधु, अग्निकाण्ड, अन्य पत्र-पत्रिकाएँ 18
7. यात्रा, मेहर देहलवी, महर्षि 24
8. नई पत्र-पत्रिकाएँ, अख़्तर साहब, उपन्यास-रचना, शाही लकड़हारा, कायस्थ-सभा 27
9. सोसाइटी, दाता दयाल, दक्षिण में, हितोपदेश 31
10. विभिन्न विधाएँ, आंदोलन, राजनीति, धाम, पत्र-पत्रिकाएँ, वक्फ़ 34
11. लाहौर में, यात्रा, शिक्षण-संस्थाएँ, मानद उपाधि, व्यस्तताएँ 38
12. अलीगढ़ में, इलाहाबाद में, प्राणांतक रोग, प्रस्थान, समाधि, अपनी मौत, मुनव्वर के क़ते', अपने बारे में 41
13. नंदू भाई, फ़क़ीर चंद, नैयर साहब, दयालानंद, ली हंग चंग, दीपक, पीर-ए-मुग़ाँ, मानव दयाल, शिवमंगल सिंह 46
14. शैक्षिक सेवाएँ 50
15. पत्रकारिता, नारी शिक्षा, बाल साहित्य, प्रौढ़ों के लिए, वृत्तांत, विभिन्न रामायण, कबीर, जीवनियाँ, अनुवाद, व्याख्याएँ, कोश, विविध शैक्षिक पुस्तकें, वचन, पत्र आदि, शायरी, अप्रकाशित रचनाएँ 54

16. अंग्रेज़ी लेखन, पंजाबी लेखन, तेलुगु लेखन 70
17. नारा, धर्म, शिक्षाएँ 72
18. टिप्पणियाँ 75
19. स्रोत 82

भूमिका

दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन के नाम और काम से मेरा पहला परिचय उनके वृहद ग्रंथ 'कबीर जोग' के माध्यम से हुआ जिसके आरम्भ में ही ये बहसें मौजूद हैं :

"कबीर साहब आध्यात्मिक दृष्टिकोण से गौतम बुद्ध जैसे महापुरुष से भी कहीं श्रेष्ठ दिखाई देते हैं... मालिक को मंजूर था कि हिंदुओं के पवित्र विचारों को मुसलमानों के ज़रिए फिर देश में फैलाया जाये... रज्जब साहब, घीसा साहब और इस प्रकार के बहुत-से आध्यात्मिक संत एक के बाद एक उठ खड़े हुए जो कबीर साहब के साथ-साथ चलना और हिंदू-मुसलमानों को चेताकर भाई चारे के सम्बन्धों में जकड़ देना अपना कर्तव्य समझते थे।"

- खंड 1, भाग 1, पृष्ठ 23 से 25

इस रचना ने मेरे मन और मस्तिष्क को बहुत गहरे में प्रभावित किया।

महर्षि जी की रचनाएँ हालाँकि इस वास्तविकता का तर्कसम्मत रूप से समर्थन करती हैं फिर भी दुनिया वालों के लिए उन्हें बार-बार यह घोषणा करनी पड़ी थी कि, "मेरे यहाँ द्वेष, संकीर्णता और हठधर्मी नहीं हैं। वे समस्याओं पर स्वयं विचार करते थे और स्वयं किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश करते थे और अपने विचारों को पूरी बेबाकी और साहसिकता के साथ अभिव्यक्ति देते थे। इसीलिए आरम्भिक दौर में उन्हें कड़े विरोधों का सामना करना पड़ा था। वे एक ओर अद्वितीय परम सत्ता के पक्षधर थे, जात-पाँत का विभाजन और स्वीकार नहीं था, प्रेम ही उनका मार्ग था, इसी मार्ग ने उन्हें इतना लोकप्रिय बना दिया कि आज देश के भीतर और बाहर उनके श्रद्धालुओं और अनुयायियों की संख्या लाखों-लाख है। वे अनेक भाषाओं के विद्वान थे और उर्दू गद्य और पद्य की लगभग सभी नई-पुरानी विधाओं में उनकी बड़ी संख्या में रचनाएँ उपलब्ध हैं। इन रचनाओं में दूरगामी और दीर्घ-कालिक प्रभाव की क्षमता विद्यमान हैं।"

विद्यार्जन और लेखन सम्बन्धी व्यस्तताओं के साथ-साथ महर्षि जी ने अपने श्रद्धालुओं की शिक्षा-दीक्षा के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। उनका कहना था कि मैं दुनिया में शिक्षक बनाकर भेजा गया हूँ। अपने पीछे उन्होंने अनुयायियों का ऐसा समुदाय छोड़ दिया जो उनकी शिक्षाओं को पूरी निष्ठा के साथ आगे बढ़ाने के कार्य में संलग्न है। यह बात पूरे विश्वास के साथ कही जा सकती है

कि बौद्धिक और भौतिक स्तर पर आधुनिक भारत के निर्माण में महर्षि जी का एक विशिष्ट स्थान है।

इस पुस्तिका के लेखन में माननीय श्री मोहन लाल नैयर (नई दिल्ली) ने मेरा विशेष मार्ग दर्शन किया। ठाकुर कमल सिंह जी (हनम कुंज) से अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हुईं। श्री सौमित्र कुमार (इलाहाबाद) ने न सिर्फ़ तमाम आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराई बल्कि पाण्डुलिपि का भी कृपापूर्वक अवलोकन किया। इन सज्जनों का सहयोग यदि न मिला होता तो इस पुस्तिका का लिखा जाना सम्भव नहीं था। मैं इनका हृदय से आभारी हूँ।

मुहम्मद अंसारुल्लाह

आत्म-परिचय

मेरी तेरी फ़हम में है फ़र्क़ सिर्फ़ इस बात का,
मैं ही शैदाई अगर दिन का तो तू है रात का।

तू किताबों का है हामी, अपने दिल पर मैं फ़िदा,
तू सिफ़त का मुद्दई, मैं मुद्दई हूँ ज़ात का।

आबे-हैवाँ चश्मा-ए-बातिन का पैकर खुश हूँ मैं,
शहद की ख़ातिर तू है मुहताज हैवानात का।

जाहिर और बातिन[1] में रहता है हमेशा इख़्तिलाफ़,
रूह पर मेरी नज़र है बंदा तू जज़्बात का।

बंदा बनकर बंदगी का दम भरा करता है शेख़,
मैं कभी क़ायल नहीं हूँ ऐसे मज़्ख़रफ़ात[2] का।

बरहमन ने ब्रह्म को समझा है अपने से जुदा,
होश का तोता उड़ाया उसने अपनी ज़ात का।

ज़ाते-वाहिद[3] का नहीं दारीन[4] में कोई शरीक,
क्यों पकाये कोई सौदा पांच का या सात का।

अब्रे-तर के क़तरों से होते हैं पैदा सब वजूद,
अपनी आँखों देख मौसम आये जब बरसात का।

अहदियत[5] में है खुशी और ग़ैरियत[6] में दर्दो-रंज,
ग़ैरियत का मानने वाला है सद आफ़ात[7] का।

मंदिरों में, मस्जिदों में ढूँढ़ता फिरता है तू,
मैं यह कहता हूँ खुदा है नाम अपनी ज़ात का।

---

1. बाहर और भीतर
2. तुच्छ और निरर्थक बातें
3. एक सत्ता
4. दोनों लोक
5. ईश्वर को अपने भीतर मानना
6. अपने से अलग समझना
7. मुसीबतें

एक

जन्म

दाता दयाल ने अपने पूर्वजों के आगमन और पूरा कानून गोयान जिला बनारस में बस जाने की घटना का वर्णन इन शब्दों में किया है :

"मैंने पंजाब में शैक्षिक व्यस्तताओं के लिए अपना समूचा जीवन समर्पित कर दिया। बूढ़ा हो गया। वतन में चला आया। मेरा घर राज बनारस, भदौही में राधा स्वामी धाम के पास है।

सदियाँ बीत गईं, मेरे पूर्वज दिल्ली से यहाँ आये थे। इस जगह पहले घना जंगल था। वह आनंदवन के नाम से जाना जाता था उस जंगल में वाल्मीकि महर्षि का आश्रम था, जहाँ रामचंद्र जी के दो पुत्रों लव और कुश का जन्म हुआ था। उनमें लव ने लाहौर लिया और कुश ने कुशवर (कुसवर) को बसाया। वहाँ के राजे हुए और ये शहर उनकी राजधानियाँ बन गये।

आनंदवन घना जंगल था। मेरे पुरखों ने उसे काटकर खेती के योग्य बनाया। कोई यहाँ बसने के लिए तैयार नहीं था। मेरे पुरखों ने ब्राह्मणों को खोजकर यहाँ लाकर बसाया। ज़मीनें दीं। गाँव-गिरांव दिये। यहाँ ब्राह्मणों के अधिक संख्या में बसने का यही कारण है। परम्परागत रूप से यह सबको पता है।"

परम्परा से जो धारणाएं बनी हुईं हैं, उनकी रोशनी में देखने से यह अनुमान होता है कि भारत में मुगलों के आगमन से पूर्व यह खानदान पूरब में आकर बस चुका था और बाबर के शासन काल में वह सम्मान का जीवन व्यतीत करता था। उपरोक्त उद्धरण से अनुमान किया जा सकता है कि ये लोग विद्यानुरागी थे और विद्वानों का सम्मान करते थे।

ठाकुर

कहते हैं कि शेरशाह सूरी जिस जमाने में सुलतान हुमायूं का पीछा करता हुआ पश्चिम की ओर चला जाता था, उसका गुजर मौजा पयागदासपुर उर्फ पूरा कानून गोयान की तरफ भी हुआ। वहाँ के कायस्थों और ब्राह्मणों ने शेरशाह की सेवा की। उनकी सेवाओं के बदले में बादशाह ने प्रसन्न होकर उन्हें ठाकुर की उपाधि प्रदान की और पयागदासपुर और किशनदेवपुरा के अलावा दो और गाँव

माफ़ी में दिये। मशहूर है कि बादशाह का फ़र्मान ताम्र पत्र पर उत्कीर्ण था और पूरा कानून गोयान के किसी प्रतिष्ठित कायस्थ या ब्राह्मण परिवार में आज तक सुरक्षित है।

शेरशाह ने इस क़स्बे के सामाजिक जीवन में भी सुधार के प्रयास किये। कहा जाता है कि वहाँ कोई ब्राह्मण विधवा थी जिसके हाथ का खाना गाँव में कोई भी नहीं खाता था। बादशाह को खबर हुई तो उसने गाँव के सभी कायस्थों और ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें राजी किया और एक भव्य प्रीतिभोज में सबने उस विधवा के हाथ का भोजन किया। मालूम होता है कि बाद के युग में ये कुप्रथाएं और रूढ़ियाँ समाज में फिर से आक्रामक हो उठीं। महर्षि जी ने लिखा है कि :

"जहाँ मैं रहता हूँ ब्राह्मण जाति के लोग रहते हैं उनमें बाल विवाह की प्रथा इतनी अधिक प्रचलित है कि बरस-बरस दिन की कन्याएं ब्याही जाती हैं। बहुत बार तो साठ वर्ष के बूढ़े का विवाह छः सात बल्कि चार-पाँच वर्ष की लड़की से कर दिया जाता है। नतीजा यह होता है कि लड़की के दस-ग्यारह वर्ष तक पहुँचने तक पति की मृत्यु हो जाती है और वह बेचारी वैधव्य भोगने पर विवश होती है।"[2]

वंश

इसी मौज़ा पूरा क़ानून गोयान में पिछली सदी के आरम्भ में एक व्यक्ति कांधामल हुए जिनका सम्बन्ध चित्रगुप्त गोत्र की शाखा श्रीवास्तव खरे से था। उनके एक बेटे का नाम गुरूदयाल सिंह था। बाप-बेटे के विषय में विस्तार से पता नहीं चल सका है लेकिन परिस्थितियों से यह अनुमान होता है कि वे अपने क्षेत्र के सम्मानित और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। स्वभाव से वे धार्मिक और विद्यानुरागी थे। ठाकुर गुरुदयाल सिंह के दो बेटे हुए – चुन्नी लाल और कृष्ण कुमार।

ठाकुर चुन्नी लाल संस्कृत और धर्म-शास्त्र के ज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे। ज्ञान के जिज्ञासु उनकी सेवा में उपस्थित होते थे लेकिन उनका कहना था कि :

"जो लोग लड़के या शिष्य के रूप में आयें, उपनिषद का भेद सिर्फ उन्हीं को बताया जाता है। बाकी और लोगों से छुपाया जाता है। जो जात-पाँत के झगड़ों में पड़े हुए हैं, वे इस ज्ञान के अधिकारी नहीं हैं।"[3]

महर्षि जी ने कोशतकी ब्राह्मण उपनिषद की व्याख्या चुन्नीलाल और हेमराज के संवादों के रूप में लिखी है[4] और यह बताया कि हेमराज ने जब यह सुना कि पयागदासपुर, राज बनारस के ठाकुर चुन्नी लाल उपनिषद के रहस्य के ज्ञाता हैं, तो वह घर-बार छोड़कर उनके पास चला आया और मकान के पास वाले बाग में रहने लगा।

ठाकुर चुन्नीलाल उन्नीसवीं के उत्तरार्द्ध तक जीवित रहे। उनके दो बेटियाँ और चार बेटे थे – जड़ाऊ देवी, मोनी-दी देवी, काशी प्रसाद, गया प्रसाद, प्रयाग दत्त और शिव सम्पतलाल। ज़मींदारी, संपन्नता और धार्मिक प्रवृत्ति उन्हें विरासत में मिले थे।

ठाकुर शिव सम्पतलाल के दो विवाह हुए थे। दोनों पत्नियाँ मध्यप्रदेश के सतना जिले में ऊँचहरा गाँव की थीं। पहली राजवैद बिहारी लाल और दूसरी राजवैद रामभद्र की लड़की थी। पहली से एक बेटी और चार बेटे थे। जागेश्वर प्रसाद, अशर्फ़ी लाल, शिवव्रत लाल, शिवशंकर लाल और सोनवर्षा देवी। दूसरी से सिर्फ एक बेटा सूरज नारायण सिंह था। जिसका जन्म 1880 ई. के आस-पास हुआ था।[5] ठाकुर शिव सम्पत लाल के घर में दोनों समय गीता और रामायण का पाठ होता थां। इस वातावरण ने उनकी संतान को भी एक विशेष सांचे में ढाल दिया था। उनका एक बेटा शिवशंकर साधु होकर निकल गया। फिर पता न चल सका कि वह कहाँ गया ? शेष सभी संतानें अपने समय में यशस्वी हुईं। ठाकुर शिव सम्पत लाल की मृत्यु 29 मार्च, 1911 को हुई।[6]

दो

जन्म

ठाकुर नंदू सिंह का कथन है कि :

"शिवव्रत लाल का जन्म मौज़ा पूरा कानून गोयान, ज़िला मिर्ज़ापुर के एक प्रतिष्ठित श्रीवास्तव कायस्थ परिवार में फ़रवरी 1860 ई. शिवरात्रि के दिन हुआ।"[7]

गौरी शंकर अख़्तर के अनुसार उस दिन 23 फ़रवरी थी।[8]

नाम

अपने नाम के बारे में स्वयं शिवव्रत लाल का कहना है कि :

"हमारा नाम शिव है, क्योंकि शिवरात्रि की भोर में जन्म हुआ था। हमारे बाबा (चुन्नी लाल) ने हमारा नाम शिव के ऊपर रखा। नाम जरा लम्बा-चौड़ा था। अक्सर लोगों को लम्बे नाम पसंद आते हैं। हम भी कभी इसको बहुत पसंद करते थे। अब इसको काट-छाँट कर दो अक्षरों का बना लिया है।"[9]

ठाकुर चुन्नीलाल ने अपने एक बेटे और दो पोतों के नाम शिव पर रखे थे। इससे शिव जी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा का पता चलता है।

यद्यपि 1913-14 की अनेक पुस्तकों पर उनका संक्षिप्त नाम शिव ही लिखा है, आख़िर ज़माने तक की रचनाओं पर उनका पूरा नाम शिवव्रत लाल वर्मन छपता रहा बल्कि समय के साथ-साथ उसमें आगे-पीछे कुछ न कुछ जुड़ता रहा। 'वर्मन' कुलनाम के बारे में श्री सौमित्र कुमार का कथन है कि :

"अपने नाम के साथ खरे या श्रीवास्तव लिखना उन्हें पसंद न था। पंजाब के रहने वाले कायस्थ अपने नाम के साथ वर्मा लिखते थे। इसलिए आम लोग इसी को कायस्थ होने की पहचान समझते थे। महर्षि जी ने 'वर्मा' को 'वर्मन' बना लिया।"

लेकिन नई पीढ़ी ने अपनी चाल बदल दी और स्वयं महर्षि जी के वंशज खरे, सक्सेना, माथुर और निगम को अपनी पहचान बना रहे हैं।

विस्तार में न जाते हुए, नाम और उससे जुड़े कुल नाम और उपाधियों का अवलोकन करने से महर्षि जी के स्वभाव की विनयशीलता को समझा जा सकता है।

मुखाकृति

शारीरिक गठन की दृष्टि से निहायत सुडौल और सुन्दरता के सांचे में ढले हुए। सिर और माथा चौड़ा जो किसी के विद्वान और कीर्तिवान होने का प्रतीक हैं। आप वास्तव में ईश्वर का अवतार थे। जब आप बातें करते तो ओठों के हिलने से ऐसा प्रतीत होता जैसे गुलाब की कलियाँ चटक रही हों। जिन्होंने आपकी आँखें देखी हैं वे बेहिचक यह स्वीकार करते हैं कि वे सुन्दरता के सभी गुणों से मंडित थे।"[10]

ऊपर से देखने में आप इस धरती के वासी थे लेकिन आंतरिक रूप से आप मस्ती के आलम में आकाश में अपना आसन जमाये रखते थे। सादा परिधान, सादा भोजन, सादा आवास, सादा दिली, सादा जबान अर्थात् हर प्रकार का सादापन आपके जीवन की एक विशिष्टता थी, औपचारिकता की गंध तक नहीं थी।"[11]

"क़द औसत दर्जे से थोड़ा ऊँचा था। शारीरिक बनावट की अपेक्षा में सिर डेढ़-दो गुना, माथा खिंचा हुआ, मगर कान सर की अपेक्षा में काफी बड़े, नाक की बनावट ऐसी कि जैसे मोहक से मोहक वस्तु को सूंघकर पहचान लेने की क्षमता रखती है। चेहरे पर चेचक के हल्के-हल्के मगर चमकीले निशान जो बहुत भले दिखाई देते थे। आँखें ऐसी तेज़ और दूरबीन कि सामने से गुजरने वाले हर पथिक के भीतर का मर्म जान लेती थीं। मूँछें बड़ी-बड़ी और कमान की तरह टेढ़ी लगती थीं। ओठ सुर्ख और मिठास भरे थे, मुख आध्यात्मिक तेज से दीप्त। रोम-रोम से हर्ष की तरंगे फूटती मालूम पड़ती थीं। क्या मजाल कोई दीन-दुखी पास आये और उसका दुःख दूर न हो। आवाज़ सुरीली बातों में मिठास, प्रेम और दया की साक्षात् प्रतिमूर्ति।"[12]

"बचपन में बड़ी भारी चेचक निकल आई थी। सारे शरीर पर चेचक के गहरे दाग़ निकल आये थे जिससे चेहरे का रंग सांवला हो गया था। पिता ने उन्हें कुलदीपक की संज्ञा दे दी।"[13]

स्वयं शिवव्रत लाल ने अपने विषय में इस प्रकार लिखा है :

"मैं दुनिया में अत्यंत कुरूप बनकर आया था। मेरे स्वर्गीय पिता जिन्हें मुझसे बहुत स्नेह होना चाहिए था, हमेशा बुरे और उपेक्षित नाम से मुझे पुकारते थे। बचपन में हास-परिहास में कहा करते थे कि इस लड़के को ब्रह्मा ने अपने हाथ से बनाया है। हर व्यक्ति जान सकता है कि बाप के इन शब्दों से एक बेटे के मन को कैसी ठेस लगा करती होगी लेकिन मैंने अपनी हमदर्द स्त्री के परामर्श को हृदय से स्वीकार कर अपने मन में सौंदर्य की कल्पना को स्थान दिया और देखते-देखते मेरी मुख-मुद्रा में अभूतपूर्व अंतर आ गया। थोड़े ही दिनों में अपनी

आज्ञाकारिता, सेवाभाव और पुत्र के रूप में अपने प्रेम से मैंने उनके मन को जी लिया। इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि वे अपनी संतान में सबसे बेहतर मुझे समझने लगे और विछोह की घड़ी में अक्सर रो दिया करते थे। हालांकि इस सत्तावन वर्ष की अवस्था में मैं सुरूप नहीं हूँ लेकिन कोई कुरूप भी नहीं कह सकता। वैचारिक शक्ति से आदमी क्या नहीं कर सकता ?"[14]

स्वभाव

कुबेरनाथ श्रीवास्तव के अनुसार :

"दिखावे और प्रदर्शन को पसंद नहीं करते थे। अलग-थलग रहने में ज़्यादा खुशी अनुभव करते थे। बातचीत बहुत कम करते। खेलों में कबड्डी को ज़्यादा पसंद करते और उसमें खुलकर हिस्सा लेते। स्वाभिमान का बहुत ध्यान रखते थे। इसलिए हमेशा धैर्यशील रहते।"[15]

ठाकुर नंदू सिंह ने इस बारे में लिखा है कि :

"कभी बेकार नहीं बैठते। जीवन बिल्कुल सहज स्वाभाविक और उन्मुक्त था। कोई बंधन पसंद नहीं करते थे। जीवन भर परिश्रम और ईमानदारी से जीविकोपार्जन किया। बहुत अल्पभोजी थे यानी एक-दो चपातियाँ खाते थे। स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों को आराम पहुँचाते थे। स्वभाव से बड़े विनम्र थे। लोगों की त्रुटियों को अनदेखा करते ओर उनके दोषों के प्रति अपने व्यवहार में क्षमावान बने रहते थे।"[16]

अपने जीवन के विषय में शिवव्रत लाल ने स्वयं लिखा है :

"मैंने जिस जीवन को अपनाया है वह केवल सेवा का जीवन है क्योंकि निःस्वार्थ सेवा का विचार है इसलिए मित्र-शत्रु सबके प्रति सेवक बना रहना चाहता हूँ। जो मेरा सम्मान करते हैं वे भी मुझे प्यारे हैं, जो अपमान करते हैं उनसे भी मैं प्रेम करता हूँ। फिर मैं किसके प्रति अपना क्रोध व्यक्त करूँ ?"[17]

माता-पिता से लगाव

शिवव्रत लाल का कहना था कि "माँ-बाप का साया ईश्वर की कृपा है आप सोच सकते हैं कि इस साये के उठ जाने से मन पर क्या बीतती है। धन्य हैं वे लोग जिन्हें नित्य माँ-बाप के दर्शन उपलब्ध होते हैं क्योंकि संसार में ये ईश्वर की जीती-जागती मूरतें हैं।"[18] उनकी सौतेली माँ ने मृत्यु के समय अपने बेटे सूरज नारायण सिंह को शिवव्रत लाल की गोद में डालते हुए यह वचन लिया था कि जीवन भर उसका ध्यान रखेंगे। अतएव वे उससे बहुत प्रेम करते थे। जब नौकरी के सिलसिले में उन्हें चुनार जाना पड़ा, पिता के जीवित होने के बावजूद वे अपने

उस छोटे भाई को साथ ले गये।[19] सन् 1937 में जब उसका निधन हुआ तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। उस समय से स्वास्थ्य गिरना शुरू हो गया।

विवाह

शिवव्रत लाल को ज्ञानार्जन में विशेष रुचि थी। इसलिए वे विवाह से इनकार करते रहते थे। अंततः माता-पिता ने अपने तौर पर उनका विवाह निश्चित कर दिया और लगभग 1880-81 ई० में तहसील मंझनपुर जिला इलाहाबाद के मौजा बंधुआ सनिचवारा के सुशिक्षित धार्मिक घराने के एक जमींदार माता प्रसाद की बेटी से उनका विवाह कर दिया।[20] ससुराल आकर जसोदा कुंवर महारानी कहलाईं।[21] पति के साथ उनके सम्बन्ध बहुत मधुर रहे।

शिवव्रत लाल के घर में एक बेटा और तीन बेटियाँ पैदा हुईं। बेटे की बालपन में मृत्यु हो गई। सहदी देवी, विद्यावती उर्फ चुनमुन देवी और कलावती उर्फ़ मुनमुन देवी तीन बेटियाँ जब बड़ी हुईं तो उनसे शिवव्रत लाल की संतानों का सिलसिला शुरू हुआ।

महारानी जसोदा कुंवर ने 21 सितम्बर 1904 को पूरा कानून गोयान में शरीर छोड़ा।[22] मृत्यु से पहले उन्होंने पति से कहा कि मेरे बाद तुम शादी कर लेना वरना मुश्किल से गुज़र होगी। मैं इजाज़त देती हूँ।"[23] जब वे तैयार न हुए तो कहा कि फिर घर में न रहना, हमेशा परदेश में रहना। शिवव्रत लाल का कहना है कि : "यही कारण है कि मैं पंजाब में रहकर पंजाब वालों की सेवा में व्यस्त हूँ।"

अपनी पत्नी के बारे में उन्होंने लिखा है कि :

"मुझे भी एक दोस्त इस जिंदगी में हाथ आया था जिसने मेरी जिंदगी ख़ास तरह के सांचे में ढाल दी। वह मेरी पत्नी थी। यह लिखने-पढ़ने, कथा-वार्ता और अध्यात्म की अभिरुचि मुझमें देखते हो, उसकी कृपा से है। मैं जैसा था, ये मैं जानता हूँ या मेरा ईश्वर, लेकिन उसने आते ही ख़ास किस्म की दोस्ती के पर्दे में मेरी जिंदगी की बुनियाद रख दी।"[24]

अपने लेखकीय जीवन के आरंभिक दौर का वर्णन करते हुए शिवव्रत लाल ने लिखा है :

"जब मैं भारत के सभी भागों में देशाटन करने के बाद आर्य इंस्टीट्यूशन, बरेली का हैडमास्टर हुआ। मेरी पत्नी साथ रहती थी। एक दिन उसने कहा, तुम रोज़ाना मुझे सच्चरित्र स्त्रियों की कथाएं सुनाया करो। उस समय मैं दिवंगता को प्रसन्न करने के लिए प्राचीन साहित्य से इस प्रकार की कथाएं इकट्ठी करने लगा। वह उन्हें ध्यान से सुनतीं। कभी प्रभावित होकर रोने लगतीं। अंत में उसने आग्रह कि

इन कहानियों को सरल उर्दू में लिखकर छपवा दूँ। मैंने इस प्रकार के पच्चीस लेखों को क्रमबद्ध किया जो "भारत की शुजा-ओ-आलम स्त्रियों" के नाम से जाने जाते हैं।"

अपनी पत्नी जसोदा कुंवर के देहावसान के बाद भी शिवव्रत लाल उनके उपदेश पर आचरण करते रहे। कहते हैं कि :

"उसकी वसीयत को ध्यान में रखते हुए हिंदू स्त्रियों से सम्बन्धित बड़े-बड़े लेख लिखें जो हमारी माताएं, सच्ची देवियाँ, सती वृत्तांत, राजस्थान की वीरानियाँ, सच्ची स्त्रियाँ आदि के नाम से बिक रही हैं।"

जसोदा कुंवर की वसीयत शिक्षा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण थी। यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि उस दौर में हिंदुओं के बीच उर्दू का इतना अधिक प्रचलन था कि हिंदू स्त्री को वसीयत करते समय किसी दूसरी भाषा का ध्यान भी नहीं आया। स्वयं शिवव्रत लाल का आचरण भी प्रशंसनीय था। उनकी इन गतिविधियों ने हिंदू परिवारों उर्दू को लोकप्रिय ही नहीं बनाया उसे पवित्र धार्मिक भाषा का दर्जा भी दे दिया।

रहन-सहन

शिवव्रत लाल का रहन-सहन बहुत सादा लेकिन साफ-सुथरा था। सौमित्र कुमार के अनुसार उनका सामान बस यह था :

एक कुर्ता, धोती, तौलिया, शाल, दरी, एक लोटा, छतरी, लेखनी और एक टूथ ब्रश। भोजन में सिर्फ दो हल्की-फुल्की चपातियाँ होती थीं जो दाल और सब्जी से खा लेते थे। अंतिम दिनों में राधा स्वामी धाम में एक कुटिया में सारा समय बिता देते थे।

तीन

शिक्षा

ठाकुर शिवसम्पत लाल ने अपने इस बेटे की शिक्षा पर स्वयं परिश्रम किया। शुरू में हिंदी पढ़ाई फिर स्वयं ही संस्कृत की शिक्षा दी। अरबी-फ़ारसी सिखाने के लिए स्थानीय रूप से बेहतरीन पुस्तकों की व्यवस्था की। सौमित्र कुमार से मिली सूचना के अनुसार :

"जनाब लक्ष्मण प्रसाद उस्ताद ने अरबी पढ़ाई और मौलवी अब्दुल वहाब ने फ़ारसी की तालीम दी।"[25]

अफ़सोस है कि कोशिशों के बावजूद इन उस्तादों के हालात मालूम न हो सके। अलबत्ता बताया गया है कि रामायण के अलावा शेख हादी की 'गुलिस्ताँ', 'बोस्ताँ' और मौलाना-ए-रूम की मस्नवी शिवव्रत लाल को कण्ठस्थ थीं।

औपचारिक शिक्षा के विषय में जो कुछ ज्ञात होता है, यह है कि चौथी जमात तक स्थानीय मदरसे में पढ़ा। उसके बाद गोपीगंज के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। वहीं से मिडिल पास किया। एंट्रेंस की परीक्षा इलाहाबाद हाई स्कूल इलाहाबाद से पास की।[26]

कायस्थ पाठशाला, इलाहाबाद से एफ. ए. करने के बाद म्योर सेंट्रल कॉलेज, इलाहाबाद में प्रवेश लिया। वहीं से 1887 ई. में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की।

डॉक्टर ऑफ लाज़

औपचारिक शिक्षा का सिलसिला ख़त्म हो चुका था। लेकिन ज्ञानार्जन में गहन अभिरुचि थी। मन से युवा और हौसले बुलंद थे। बताया गया है कि बरेली प्रवास के दौर में दो थीसिस लिखे। उन्हें अमरीका भेजा तो शिकागो इलीनाइज के पाश्चात्य विश्वविद्यालय ने 30 जून, 1899 ई. को मास्टर ऑफ़ आर्ट्स और फिर 22 दिसम्बर को डॉक्टर ऑफ़ लाज़ की आला तरीन सनदें तज़वीज़ कीं।

अफ़वाह

इस दुनिया के झमेले बड़े विचित्र और विस्मित कर देने वाले हैं। कोई दस-ग्यारह वर्ष बाद विरोधों का सिलसिला शुरू हुआ (जिनका विस्तार आगे आयेगा)

तो एक पत्रिका में निम्नांकित पंक्तियाँ भी छपीं :

"सुनते हैं कि रिसाला 'साधु' के संपादक बाबू शिवव्रत लाल वर्मन मुश्किल से एंट्रेंस पास हैं और एम. ए. की डिग्री उन्होंने एक बराय नाम अमरीकन यूनिवर्सिटी से ख़रीदी है। अगर किसी मामूली आदमी के बारे में यह अफ़वाह उड़ती तो कोई गंभीरता से न लेता लेकिन बाबू साहब ने एक धार्मिक, नैतिक और सबसे बढ़कर आध्यात्मिक समाज सुधारक की हैसियत प्राप्त कर रखी है, ऐसे व्यक्ति का ख़रीदी हुई डिग्री ग्रहण कर लेना, आध्यात्मिकता की लीडरी को बट्टा लगाना है और बाबू साहब की नैतिक कमज़ोरी है जिसका इलाज उन्हें फ़ौरन करना चाहिए। माना कि बाबू साहब ने क़ौम के लिए हजारों पृष्ठ लिखे हैं। अच्छे-अच्छे लेख पब्लिक के सामने पेश किये हैं लेकिन अगर यह अफ़वाह सही है तो सब पर पानी फिर गया। हमारे विचार से यह अफ़वाह निराधार है और बाबू साहब ऐसे ही सदाचारी और पवित्र हृदय व्यक्ति हैं जैसा कि उनके लेखों से मालूम होता है।"[27]

शेख मुहम्मद इब्राहीम 'ज़ौक़' ने खूब कहा है :

जो हसद किसी को तुझ पर हो तो है ये तेरी ख़ूबी,
कि जो तू न होता तो वो क्यों हसूद होता।

ज्ञान में लीन

शिवव्रत लाल अत्यंत मेधावी व्यक्ति थे। वे ज्ञान के पुजारी थे। जिस जगह जाते वहाँ की परम्पराओं और जनश्रुतियों को ध्यान से सुनते। वहाँ के लोगों की आस्थाओं, रीति-रिवाजों को मालूम करते थे। लिखित रूप में जो सामग्री प्राप्त हो जाती उसका अध्ययन करते और इस प्रकार जीवन भर अपने ज्ञान कोश में वृद्धि करते रहे। सच यह है कि वे ज्ञान-लीन के पद पर पहुँच गये थे और इस स्थिति में उनके ज्ञान की सीमाओं को निर्धारित कर पाना सम्भव नहीं लगता। उनकी कृतियाँ उनके ज्ञान की उत्कृष्टता का मूर्त रूप हैं।

शिवव्रत लाल की स्मरण-शक्ति बड़ी प्रबल थी। साथ ही उनके भीतर असाधारण आत्म विश्वास था। मुण्डकोपनिषद् की भूमिका में उन्होंने लिखा है :

"इसे मुण्डन करने के रहस्य को खोलने वाला बताया गया है। स्वामी शंकराचार्य जैसे धुरंधर विद्वान ने भी यही भूल की है। उपनिषदों के इतिहास में पहला व्यक्ति मैं हूँ जो इस प्राचीन मत का खण्डन करता हूँ।"

"मैंने अनेक भाषाओं में पुस्तकें पढ़ी और लिखी हैं। इस बुज़ुर्ग (कबीर) की वाणी मेरी दृष्टि में सब पर भारी पड़ती है।"

शिवव्रत लाल की 'श्री विज्ञान रामायण' के बारे में गौरी शंकर 'अख़्तर' का दावा है कि ऐसी पुस्तक संस्कृत भाषा में भी न निकलेगी।

घटनाएं बताती हैं कि शिवव्रत लाल ने संसार के सभी बड़े धर्मों की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का अध्ययन किया था और वे अरबी, फ़ारसी, उर्दू, संस्कृत, अंग्रेज़ी के अलावा पंजाबी, बंगाली, तेलुगू और दूसरी कई भाषाओं को अच्छी तरह जानते थे।[28]

एक अलग राय

शिवव्रत लाल एक मर्मज्ञ व्यक्ति थे। ज्ञान और अनुभव ने उन्हें इस वास्तविकता से परिचित करा दिया था कि प्रचलित शिक्षा-व्यवस्था देश और राष्ट्र के लिए लाभकारी नहीं है। उन्होंने एक घटना का इस प्रकार वर्णन किया है :

"मैं आर्य गज़ट की एडीटरी के ज़माने में महात्मा हंसराज जी प्रिंसीपल दयानंद कालेज से मिलने गया। आप बोर्डिंग हाउस के नक्शे देखने में व्यस्त थे। मुझसे पूछा कि 'हमारे कालेज के बारे में आपकी राय क्या है ?' मैंने जवाब दिया, 'आपका काम निहायत ही शानदार और मुफ़ीद है।' इससे उनकी संतुष्टि नहीं हुई। फिर फ़रमाया, "सच्ची राय दीजिए।" मैंने कहा कि सच्ची बात तो यह है कि आपके कालेज से क्लर्क, वकील वगैरह बड़ी संख्या में निकलेंगे लेकिन काम का आदमी बमुश्किल कोई पैदा होगा। यह शिक्षा छल-कपट और मक्कारी को बल देगी, इससे नैतिक और धार्मिक आदर्शों की आशा करना व्यर्थ है। आप एक आदमी पैदा कर दीजिए, वह बेशुमार कालेज बना लेगा। हजारों कालेज हों और कोई आदमी न निकले तो इस मेहनत से सिवाय अफ़सोस के और क्या हासिल होगा ?"

चार

नौकरी

शिक्षा से निवृत्त होने के बाद नौकरी का सिलसिला शुरू किया। कुबेरनाथ जी ने लिखा है :

"शिक्षा समाप्ति के बाद बनारस राज में महाराजा रामनगर के यहाँ नौकरी की। मंसबी के दायित्व का बड़ी निष्ठा और लगन के साथ पालन किया। लेकिन यह देखकर कि रिश्वत न लेने में दिक्कतें पेश आती हैं, इस्तीफा दे दिया। महाराजा ने बड़ी मुश्किल के साथ उसे स्वीकार किया।"[29]

सौमित्र कुमार के अनुसार इसके बाद वे अपने किसी चचेरे भाई के वास्ते से महाराजा रीवाँ के यहाँ पहुँचे। ठाकुर नंदू सिंह ने लिखा है कि :

"आप रीवाँ रियासत में ताल्लुकेदार के पद पर नियुक्त हुए क्योंकि फ़क़ीरों के संस्कार थे। आपको यह शानो-शौक़त पसंद न थी। इससे मुक्ति पा ली।"[30]

सौमित्र कुमार से मालूम हुआ कि छः माह तक रियासत रीवाँ के कोषाधिकारी रहे।

व्यवसाय

नौकरियाँ छोड़ देने के बाद शिवव्रत लाल ने व्यावसायिक कारोबार का विचार बनाया। कलकत्ते गये लेकिन व्यवसाय में पैसे की ज़रूरत होती है।[31] जिसका तत्काल प्रबंध सम्भव नहीं था इसलिए मजबूरन घर लौट आये। फिर किसी फ़र्म में नौकरी कर ली लेकिन वह भी छोड़ दी। देखने में शायद ये घटनाएं उनकी असफलता को सूचित करती हों लेकिन वास्तविकता यह है कि परिस्थितियाँ जाने या अनजाने उन्हें अपने सच्चे लक्ष्य की ओर ले जा रही थीं।

हैडमास्टरी

शिवव्रत लाल ने अपनी रचनाओं में बार-बार कहा है कि मुझे शिक्षक बनाकर भेजा गया है और घटना-क्रम ने उनके इस दावे सर्वांश सत्य सिद्ध किया है। शुरू में वे अपनी असाधारण योग्यता और क्षमताओं के कारण मेरठ की देवनागरी पाठशाला में हैड मास्टर नियुक्त हुए। मुंशीलाल जी गोयल ने लिखा है कि :

"हम सब लोग श्री छोटे लाल जी सुनार, सदर बाजार मेरठ के यहाँ मेहमान हुए। हुजूर ने सिर्फ़ एक सप्ताह में उन्हें हिन्दी सिखाई थी। मेरठ की देवनागरी पाठशाला देखी। जहाँ हुजूर खुद 1888 ई. इलाहाबाद कालेज छोड़ने के बाद हैड मास्टर नियुक्त हुए थे। हुजूर थोड़े दिनों यहाँ काम करने के बाद चुनार चले गये और वहाँ मिशन हाई स्कूल में उसी पद पर आसीन हो गये थे।"[32]

मालूम होता है कि मेरठ की नौकरी बहुत अल्पकालिक थी। इसीलिए कई लोगों ने इसका ज़िक्र भी नहीं किया। कुबेरनाथ श्रीवास्तव ने लिखा है :

"चुनार में हैड मास्टर के पद पर नियुक्ति पाई। उसमें आपका यह हाल था कि हर घंटे में किसी न किसी कक्षा के विद्यार्थियों को पढ़ाते रहते। कभी छुट्टी नहीं ली। बराबर स्कूल के कार्यों में ही लगे रहते।"[33]

शिवव्रत लाल की शैक्षिक अभिरुचि ने उनसे कैसे-कैसे काम लिए, निम्नलिखित उद्धरण से इसका अनुमान किया जा सकता है :

"1888 ई. मैंने कालेज छोड़ा और चुनार में चर्च मिडिल स्कूल में हैड मास्टर हो गया। चुनार मिर्ज़ापुर ज़िले में है और ऐतिहासिक स्थान है। यहाँ हिंदुओं का एक बहुत ही पुराना क़िला अब तक मौजूद है। किले की दक्षिणी दीवार फटी तो उससे कई बौद्ध प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं। जिन पर पालि भाषा में लेख खुदे हुए थे। मेरी मौजूदगी में बाबू हनुमान प्रसाद, चुनार के दिवंगत रईस की देख-रेख में उनके लिए इन प्रतिमाओं और शिलालेखों के चित्र लिये गये जो एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, कलकत्ता में शोध हेतु भेजे गये थे।"[34]

उस ज़माने में मिशन स्कूल की हैड मास्टरी बड़ी चीज थी। वहाँ अंग्रेज़ विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच रहकर ईसाइयों के सामाजिक आचार विचार के अलावा उनकी चिंतन-पद्धति और शिक्षा की परम्परा को समझने के अवसर मिले। जिससे उनकी भविष्य की प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ कोई सात-आठ वर्ष तक चुनार में रहने के बाद शिवव्रत लाल ने वहाँ की नौकरी से मुक्ति पा ली और बरेली चले आये और यहाँ वे आर्य समाज इंस्टीट्यूशन में हैड मास्टर हो गये। इस नौकरी को उन्होंने राष्ट्र सेवा की भावना से स्वीकार किया था।

शिवव्रत लाल एक विचित्र उदासीन स्वभाव के धनी थे। धन के पीछे नहीं दौड़े। स्वयं कहते हैं :

"जब मैं हैड मास्टर था, मुझको हुक्म था किसी से नाजायज़ रूपये न लेना। किसी-किसी वक़्त अपनी सारी तनख्वाह उस्तादों और शागिर्दों में बाँट दिया करता था और खाली हाथ घर जाता था। हालत यह थी कि रात के बारह बजे भी उनको बुलाता तो वे फ़ौरन हाज़िर होते थे।"[35]

पाँच

धार्मिक शिक्षा

शिवव्रत लाल ने पारम्परिक धार्मिक वातावरण में शिक्षा पाई थी। आरम्भिक ज़माने के प्रसंगों का उल्लेख करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है :

"मेरे कुल गुरू मौजा नैनी के एक ब्राह्मण थे। पिता के आग्रह पर आरम्भ में मैंने उनसे उपदेश लिया था किंतु उनसे साफ़-साफ़ कह दिया था जिस समय कोई आध्यात्मिक विद्वान मुझे मिल जायेगा, मैं उससे दीक्षा लूँगा। पंडित जी ने मेरी शर्त सहर्ष स्वीकार कर ली।[36] वैसे ज़्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे लेकिन सामान्य पंडितों की भाँति संकुचित विचारों के भी नहीं थे।"[37]

ब्रह्म समाज

ब्रह्म समाज ने हिंदू युवाओं और शिक्षित वर्ग में अपना प्रभाव बना रखा था। शिवव्रत लाल शुरू से ही श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर की खोज में थे। इस संस्था के सिद्धांत और आदर्शों से बहुत प्रभावित हुए। अपने व्यवहार से उन्होंने इस संस्था की गतिविधियों का समर्थन किया। उनके एक उपन्यास 'झलकदार मोती' के बारे में बताया गया है कि : "इसका कथ्य ईसाइमत का विरोध और ब्रह्म समाज का समर्थन करता है।"

आर्य समाज

शिवव्रत लाल के विद्यार्थी जीवन में आर्य समाज का आंदोलन नया था। इस आंदोलन के सिद्धांत और विश्वासों में बड़ा आकर्षण था अतएव यह बहुत तेजी के साथ समाज में लोकप्रिय हो गया। इस आंदोलन ने हिंदू जाति को नया जीवन दिया और हिंदुओं में अपनी अस्मिता की खोज का भाव उत्पन्न कर दिया था। शिवव्रत लाल जैसा प्रतिभाशाली व्यक्ति यदि इस आंदोलन से प्रभावित न होता तो आश्चर्य होता। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि :

"मैं होश सम्हालने के साथ ही आर्य समाज की गतिविधियों में रुचि लेता रहा हूँ।"[38] लेकिन उनकी मूल अभिरुचि अपना प्रभाव दिखाती रहती थी। उनके ही शब्दों में :

"जिस ज़माने में हम चुनार में हैड मास्टर थे, आर्य समाज के प्रशंसक और पक्षधर होते हुए भी फ़कीर परस्ती और फ़क़ीर नवाज़ी की आदत न छोड़ सके। अक्सर साधु और महात्मा हमारे यहाँ आया-जाया करते और अड़ोस-पड़ोस के हिंदू लोग यह सोचा करते थे कि हम भी किसी न किसी तरह की साधु-वृत्ति करते हैं। उनका यह विचार हर तरह से ग़लत था क्योंकि यहाँ इसकी हवा तक नहीं थी।"[39]

शालिग्राम जी

शिवव्रत लाल निरंतर किसी आध्यात्मिक गुरू की खोज करते रहे। अंत में उनकी दृष्टि राय बहादुर शालिग्राम जी पर पड़ी। शालिग्राम जी पोस्ट मास्टर जनरल ऑफ़ इण्डिया रह चुके थे। स्वामी शिव दयाल सिंह सेठ के वैचारिक उत्तराधिकारी और स्वयं राधास्वामी मत के प्रतिपादक थे। 27 अप्रैल 1887 ई. को जब वे म्योर सेंट्रल कॉलेज, इलाहाबाद के विद्यार्थी थे, उन्होंने राय साहब की सेवा में एक निवेदन भेजा, जिसमें लिखा था :

"मेरे यहूदी भाषा के स्वर्गीय अध्यापक श्रद्धेय डब्ल्यू हूपर साहब एम. ए. ने, जो बड़े ही कुशल धर्म प्रचारक थे, मुझे अपने धर्म से संतुष्ट करने के भरसक प्रयास किये लेकिन सफल नहीं हो सके। मुझे मालूम हुआ है कि आप भी धार्मिक सम्प्रदाय के अध्यक्ष हैं। यदि आप मुझे अपने सम्प्रदाय के नियमों और आदर्शों से अवगत करायेंगे तो आपकी अति कृपा होगी।"[40]

इस परिचय के बाद अपने एक सहपाठी के साथ शिवव्रत लाल को उनका सान्निध्य प्राप्त हुआ। वह राय साहब का सत्संगी था। इसकी प्रतिक्रिया उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त की है :

"विवशता श्रीमान् के पवित्र चरणों में ले गई। विचार आया मेरी सूरत फ़क़ीराना, तेरा दरबार शाहाना, वहाँ बैठा जहाँ सबके जूते उतारे जाते थे। हुज़ूर ने कृपादृष्टि की। अपने पलंग के किनारे मेरे बैठने की जगह निश्चित कर दी। बोले, अब यहाँ बैठा करो, मुझे बार-बार न कहना पड़े। तीन बार दरबार में हाज़िर हुआ। पहली बार हाज़िरी के समय माननीय महोदय ने कहा, यह क्लासीकल राइटर होगा..... हुज़ूर मुझे एकांत में संत धर्म की बारीकियाँ समझाया करते थे। तीसरे साल मैं फिर आगरा गया। मांट्रियल एक्सपोज़ीशन (सेन फ्रांसिस्को, अमरीका) के सिलसिले में काम कर रहा था। मेरे सिर पर वरद-हस्त फेरकर कहा, 'जाओ जहाँ-जहाँ रहो, प्रचार करते रहो।' मैं ये शब्द सुनकर दंग रह गया, सुध-बुध बिसर गई :[41]

न अक्ल थी, न तमीज़ और दिल न मायिल था।
न उस ख़याल का उस वक़्त में मैं सायिल था।।

प्रतिज्ञा की, अब जब तक मन चाहा प्रचार न कर लूँगा, दरबार में हाजिरी न दूँगा।[42]

तीसरी और अंतिम भेंट के विषय में श्री कुबेरनाथ श्रीवास्तव ने लिखा है :

"हुजूर ने मुंतज़िम से कहा कि हमारे हिस्से का दूध लाओ। दूध आया। हुजूर महाराज ने चंद घूँट ख़ुद पिये और शेष आपको पिलाते हुए कहा कि शारीरिक रूप से तुममें और मुझमें भले ही भेद हो, आध्यात्मिक दृष्टिकोण से कोई विभेद नहीं। जाओ प्रचार का कार्य पूरा करो। मैं हमेशा तुम्हारे अंग-अंग में रहूँगा।"[43]

आर्य समाज में

जैसा कि स्वयं का कहना है, शिवव्रत लाल 1896-97 ई. सक्रिय और वास्तविक अर्थों में आर्य समाज में सम्मिलित हुए। उस समय वे बरेली में थे। इस हैसियत से वे आर्य समाज के अख़बार 'आर्य पुत्र' के सम्पादक नियुक्त हुए। इसके अलावा उन्होंने एक अखबार और एक पत्रिका भी जारी की, जिसके बारे में मोतीलाल 'मुख़्तार' जी ने लिखा है :

"आपकी वृत्ति स्वच्छंद थी और ईश्वर ने आपको किसी कार्य के लिए चुना था। अतएव नौकरी में रहते हुए भी आपने 'दबदबा-ए-कैसरी' नामक अख़बार बरेली से निकाला जो थोड़े ही दिनों तक ख़ास और आम लोगों के बीच लोकप्रिय रहा। 'ज़माना' के प्रकाशन का श्रेय भी आपही को है जो अब माननीय मुंशी दयानरायन निगम के सम्पादकत्व में निकल रहा है। फरवरी से अक्टूबर 1903 तक आपके सम्पादन में प्रकाशित होता रहा। बाद में आपने उसे मुंशी साहब के सुपुर्द कर दिया।"[44]

वह ज़माना था जब अंग्रेज़ी हुकूम के प्रति वफ़ादारी को देश प्रेम के लिए ज़रूरी समझा जाता था और आर्य समाज इस मामले के आगे-आगे रहती थी। अतएव 'दबदबा-ए-क़ैसरी' के नाम से उसकी सामग्री का अनुमान किया जा सकता है। सौमित्र कुमार के अनुसार यह साप्ताहिक अख़बार 1903 ई. जारी हुआ था और लगभग एक वर्ष तक निकला। इसका अंक आज तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

'जमाना' मासिक के बारे में स्वयं शिवव्रत लाल ने लिखा है :

"जब मैं बरेली में हैड मास्टर था, मैंने उर्दू में लिखने की ओर ध्यान दिया। जब मेरे 'ज़माना' नामक पत्र का पहला अंक निकला। हिंदू और मुसलमान दोनों उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे लेकिन मैंने अपना काम जारी रखा। 'ज़माना' उसी छःमाही में कामयाब होगा।"[45]

महाशय

बरेली निवास के ज़माने में शिवव्रत लाल की लेखनी में प्रवाह आ चुका था। उनकी रचनाएँ सम्मान के साथ पढ़ी और देखी जाने लगी थीं। उस ज़माने में उन्होंने कई अछूते विषयों पर बहसों की शुरुआत करके अपनी योग्यता की धाक जमा ली थी। उनकी उस समय की रचनाओं में 'प्राचीन आर्यों में लेखन कला का रिवाज' जैसा विस्तृत लेख भी था जो सत्य धर्म प्रचारक प्रेस हरिद्वार से 1903 ई. में प्रकाशित हुआ था।[46] लेखन कला से सम्बन्धित उस समय किसी भी भारतीय भाषा में कोई सामग्री नहीं थी। इस आलेख के मुख-पृष्ठ पर उनका नाम इस प्रकार छपा हुआ है – महाशय शिवव्रत लाल वर्मन साहब एम. ए.।

इसका इतना स्वागत हुआ कि उनसे विभिन्न विषयों पर लेख लिखने के अनुरोध किये जाने लगे। ख़ुद लिखते हैं :

"जिस ज़माने में (1903 ई.) मैं आर्य समाज इंस्टीट्यूशन, बरेली का हैड-मास्टर और 'आर्य पुत्र' बरेली का सम्पादक था, मछलीशहर, जिला जौनपुर की आर्य समाज के मंत्री जी ने मुझसे लिखित में अनुरोध किया था कि अपनी ओर से राधास्वामी मत की शिक्षाओं के बारे में एक पैम्फलेट प्रकाशित करूँ ताकि धार्मिक आचार्यों को उसके विषय में राय बनाने का अवसर मिल सके। मैं अपनी पत्नी की सेवा-सुश्रूषा के कारण उनके इस आदेश का पालन नहीं कर सका।"[47]

हरिद्वार में

महाशय शिवव्रत लाल को अपनी पत्नी के निधन का बहुत दुःख हुआ। नंदू भाई ने इस बारे में लिखा है :

"उनके दिल को सख़्त सदमा पहुँचा। सब कुछ छोड़-छाड़ कर सैलानी हो गये। घूमते-घामते हरिद्वार पहुँचे। सतधर्म प्रचारक प्रेस, हरिद्वार में महात्मा मुंशी राम जी के माध्यम से उनकी पुस्तकें छपा करती थीं। प्रेस के मैनेजर पंडित केशवराम शास्त्री उनके मित्र थे। कुछ दिनों हरिद्वार में ठहरे।"[48]

महाशय शिव 1904 ई॰ के अंत में हरिद्वार पहुँचे थे। संयोग से वहाँ महात्मा हंसराज और लाला लाजपत राय भी गये थे। पंडित केशवदेव जी ने उनसे महाशय जी की भेंट करा दी। स्वयं महाशय शिव का कथन है कि :

"मैंने महात्मा हंसराज जी से निवेदन किया कि यदि अपनी प्रतिष्ठित संस्था दयानंद कॉलेज, लाहौर में मेरी सेवाएं स्वीकार करें तो मैं हाजिर हूँ।"[49]

मालूम होता है, उस समय कालेज में कोई जगह न थी, इसलिए उन्होंने आर्य गजट की एडीटरी का काम सौंप दिया और वे अगस्त 1905 में लाहौर चले गये।

छह

उर्दू

अधिकांश हिंदी लेखक यह शिकायत करते आये हैं कि उर्दू साहित्य के इतिहास ग्रंथों में बेचारे हिंदू शायरों को कहीं-कहीं फुटनोटों में जगह दी जाती है।[50] लेकिन शिकायत करने वालों ने सच्चाई पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। खुद 'ख़ुम्ख़ाना-ए-जावेद' की चार जिल्दों में उन्नीस सौ से अधिक शायरों में लाला सुखराम का तमाम कोशिशों के बावजूद हिंदू शायरों की संख्या ढाई सौ से कुछ ऊपर ही निकल सकी है और यह जाहिर है कि उनमें से कोई भी मीर, सौदा, ग़ालिब, ज़ौक, मोमिन, नासिख़, आतिश, इंशा, मुसहफ़ी और रंगीन आदि के समकक्ष नहीं हैं। महाशय शिवव्रत लाल सच्चाई से आँखें चुराने के आदी नहीं थे। उन्होंने आरोप लगाने के बजाय पूरे साहस के साथ यह स्वीकार किया है :

"उर्दू में हिंदुओं का कोई लिटरेचर पहले नहीं था अगर था भी तो वह अज्ञात और लोगों की आँखों से ओझल पड़ा हुआ था। 1903 ई. में हमने शैक्षिक कार्य की ओर ध्यान दिया सबसे पहले नौजवानों की रुचि के अनुरूप पुस्तकें लिखीं। फिर रामायण, महाभारत, पुराणेतिहास, दर्शन, उपनिषद्, वेदांत, योग और सांख्य आदि की ओर ध्यान दिया। अंत में संत मत का गहन अध्ययन किया। इन पुस्तकों की संख्या तीन-चार सौ के भीतर है। देश में हर जगह इनका प्रचलन है। इनके कई-कई अनुवाद भी हुए हैं। हिज़ आनर लेफ़्टीनेंट गवर्नर साहब पंजाब ने वित्तीय सहायता से हमें उपकृत किया है। ये हमारी सेवाएं हैं, जो आपके सामने हैं। इनका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि हिंदुओं में लेखन-कार्य को लेकर रुचि पैदा हो गई है और अब इस अभिरुचि के लोगों की संख्या संतोषजनक हो गई है।"[51]

महाशय शिवव्रत लाल की भाषा किताबी और स्तरीय भाषा से बहुत भिन्न होती थी। वे सचेत भाव से ऐसी भाषा लिखते थे। अतएव उन्होंने अपनी विभिन्न पुस्तकों में इस ओर संकेत किया है। एक जगह लिखते हैं :

"मैं उर्दू के ज़रिए हिंदी भाषा को आगे बढ़ाना चाहता हूँ मेरी भाषा खिचड़ी है जिसमें हिंदी, संस्कृत शब्द बहुतायत में आते हैं। यह मैं जान-बूझ करता हूँ

ताकि हिन्दी के शब्द पढ़ने वाले की ज़बान पर चढ़ जायें।"

महाशय शिव ने राह दिखा दी थी। उनके कार्य को उनके योग्य दामाद मुंशी गोरीशंकर लाल 'अख़्तर' ने पूर्णता तक पहुँचाने की कोशिश की। उन्होंने अपनी पत्रिका में यह घोषणा प्रकाशित की :

"मान सरोवर पत्रिका[53] का मूल उद्देश्य हिंदू साहित्य की रक्षा और उसका प्रचार है। इस समय देश में ऐसी कोई भी पत्रिका नहीं है जो खुलकर हिंदू लेखकों के लेखों के प्रकाशन के माध्यम से देश सेवा कर रही हो। और देशवासियों के लिए हिंदू साहित्य उपलब्ध कराती हो। आप राष्ट्रीय यज्ञ में मेरी सहायता कर इस मिशन को सफल बनायें।"[54]

आर्य गज़ट

महाशय शिव आर्य गज़ट के सम्पादक होकर लाहौर आये थे। यहाँ आने की कहानी उन्होंने स्वयं अपने शब्दों में इस प्रकार बयान की है :

"मैं 1903 ई. में हरिद्वार में पंडित केशव देव जी का मेहमान हुआ। उन्होंने लाला सोमनाथ से भेंट कराई। लाला साहब ने धार्मिक उत्साह में आकर भगवान श्री रामचंद्र जी, परम संत कबीर साहब और गुरू नानक साहब के विषय में ऐसे अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया जो कि असहनीय थे। मैं उठकर गंगा जी के तट पर चला गया। अज्ञानता और धार्मिक वैमनस्य से अक्सर नादान और कट्टर आदमी अनाप-शनाप कह डालते हैं और दूसरों की भावनाओं को आघात पहुँचाने के अपराधी होते हैं। जब मैं गंगा जी से वापस आया, मन में निश्चय कर लिया कि आर्य भाइयों के विचारों में कुछ संशोधन करना चाहिए। मैंने 'आर्य गज़ट' लाहौर की एडीटरी का चार्ज लिया। और इसी क्रम में कबीर के विचार, नानक के आदर्श और पुराणों की कथाओं से सम्बन्धित लेख लिखना शुरू किये। 'आर्य गज़ट' को मेरे दौर में जो लोकप्रियता मिली वह अब तक मुश्किल से किसी हिंदू अखबार या पत्रिका के हिस्से में आई होगी। मैं इस अखबार में हमेशा 'आर्य' की जगह 'हिंदू'[55] शब्द का व्यवहार करता था। वेद-मंत्रों की व्याख्या के साथ पुराण कथाएं इस ढंग से लिखता था कि सनातन धर्म सभा के मंदिरों में भी मेरे अखबार को लोग बड़े आदर भाव के साथ पढ़ते थे।"[56]

यह सही है कि गंभीर प्रकृति के लोगों के बीच महाशय शिव को अत्यधिक सफलता मिली लेकिन कट्टर आर्य समाजी उनके विचारों को स्वीकार न कर सके।

अलगाव

महाशय शिव लगभग दो वर्ष तक 'आर्य गज़ट' के सम्पादक रहे। नंदू भाई ने लिखा है कि :

"अचानक आर्य समाज में धार्मिक खंडन की बीमारी फैली। राम, कृष्ण और गौतम बुद्ध के साथ-साथ दूसरे धर्म-नायकों के विरुद्ध धुआंधार व्याख्यान होने लगे। जिससे वातावरण दूषित होने लगा। आपने तत्काल आर्य गज़ट के सम्पादक पद से त्यागपत्र दे दिया।"[57]

महाशय शिव ने इस बारे में लिखा है कि :

"मार्च, 1907 ई. में अपने स्वर्गीय चाचा प्रयाग दत्त जी की बीमारी के कारण मैं अपने वतन वापस गया। फिर कई माह तक नहीं लौट सका।"[58]

संत मत

महाशय शिव आर्य समाज से अलग हो गये थे। बक़ौल उनके वे मौलाना रूम के इस शे'र में विश्वास रखते थे :

तू बराये वस्ल कर्दन आमदी,
ने बराये फ़स्ल कर्दन आमदी।

आर्य-समाज के बारे में उनकी राय यह थी कि :

"आर्य समाज हमारे बीच एक नई धार्मिक प्रवृत्ति है जो इस्लाम और ईसाइमत की शिक्षा के प्रभाव से अस्तित्व में आई है। इसका अपना कोई दर्शन नहीं है।"[59]

इस नई प्रवृत्ति से मुक्ति पाने का आवश्यक परिणाम यह था कि पुरातन की ओर लौटा जाये और क्योंकि यह नई प्रवृत्ति इस्लाम और ईसाइमत पर टिकी हुई थी, इसलिए इन दोनों पर चोट पड़ना भी स्वाभाविक था। संत मत का परिचय कराते हुए नंदू भाई ने लिखा है कि :

"संत मत दयाल मत है। दयाल मत पूर्णतः संत मत है। संत मत प्रेम का मत है। इसमें प्रेम ही प्रेम है।"[60]

महाशय शिव ने इस विषय में लिखा है कि :

"राधा स्वामी मत क्यों प्रकट हुआ ? सृष्टि में इसकी आवश्यकता थी ? क्या नौ सौ निन्यानवे मत-मतांतर जो हिंदुओं के बीच प्रचलित थे, वे अपर्याप्त थे कि एक की संख्या और बढ़ाकर उसे हज़ार बनाया जाये ? इसका उत्तर यह है कि राधा स्वामी मत कोई धार्मिक सभा नहीं है यह संतों का आध्यात्मिक मार्ग है और पंथ कहलाता है।"[61]

मूर्ति पूजा

शिवव्रत लाल मूर्ति पूजा के विरूद्ध नहीं थे। उन्होंने अपनी अनेक पुस्तकों में अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी है। लिखते हैं :

"हज़ारों वर्ष से मूर्ति पूजा का खंडन होता रहा है। न कोई शास्त्रों के अभिप्राय को समझता है, न वेदों के आध्यात्मिक संदेश की ओर किसी का ध्यान जाता है। सब दिग्भ्रमित हो रहे हैं। जिससे हिंदुओं की आध्यात्मिक स्थिति संकटग्रस्त हो गई है। यह सच है कि मूर्ति पूजा का विधान कुछ भ्रष्ट अवश्य हो गया है लेकिन आदर्श से उचित और सच्चा है। फिर उसकी जड़ क्यों उखाड़ी जाती है ? गहराई से अध्ययन करने पर उनको कुछ न कुछ समझ आ जायेगी। जिनकी आँखों पर वैमनस्य, संकीर्णता और हठधर्मी की ऐनक नहीं चढ़ी हुई है, वे अवश्य इससे लाभान्वित होंगे।"[62]

इस प्रकार देखा जा सकता है कि आर्य समाज की तुलना में अब उनके विचारों में बुनियादी परिवर्तन दृष्टिगत होता है।

साधु

महाशय शिव ने अपने धार्मिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए लाहौर से एक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। खुद लिखते हैं :

"अगस्त, 1907 में मैंने 'साधु' नामक पत्रिका शुरू की जिसका मूल उद्देश्य यह था कि बिना किसी दुराग्रह के आर्यावर्त के सभी प्रचलित धर्मों के बारे में सामान्य जानकारी दी जाये तथा तसव्वुफ़ और वेदांत पर विशेष सामग्री प्रकाशित की जाये।"[63]

कहा जा सकता है कि वे विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। स्वयं अपने बारे में उन्होंने बार-बार यह घोषणा की है कि उनमें हठधर्मी नहीं है। वे समस्याओं पर विचार करते थे और आवश्यकतानुसार अपने विचारों में परिवर्तन के लिए भी तैयार रहते थे। अतएव उपर्युक्त उद्धरण में हिंदुस्तान की जगह 'आर्यावर्त' शब्द का प्रयोग इसी बात का प्रमाण है। श्री मोती लाल 'मुख्तार' ने 'साधु' पत्रिका के विषय में लिखा है :

"विधाता ने आपको एक व्यापक दृष्टि और उन्मुक्त विचारधारा दी थी। आपने 'आर्य गज़ट' से मुक्ति पाई और अगस्त, 1907 से लाहौर में 'साधु' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। इसके लेख इतने रोचक और प्रभावपूर्ण होते थे कि कुछ ही महीनों में इसकी मुद्रण-संख्या दुगुनी हो गई और कद्रदानों की संख्या दिन प्रति बढ़ती गई। जन सामान्य के सोच में उदारता पैदा करना इसका मुख्य हेतु था।"[64]

116042

कट्टर आर्य समाजियों की दृष्टि में 'साधु' की प्रगति एक खतरे की भाँति थी। उन्होंने इसका हर तरह मुक़ाबला किया। स्वयं उनके शब्दों में :

"राधा स्वामी मत स्वीकार कर लेने से आर्य समाज की ओर से मेरे ऊपर जानबूझकर और अनुचित प्रहार किये गये। साजिशें की गईं। मुकदमे बनाये गये। मेरा भी इसमें कुछ दोष था। अगर मुझमें दोष न होता तो वे ऐसा न करते। अखबारों के कालम स्याह किये गये। ईर्ष्यालुओं को जब कोई दोष न दिखाई दिया तो मुझे जाली एम. ए. और राधा स्वामी पंथी कहकर गालियाँ देने लगे। मैंने यह सब सहन किया।"[65]

अग्नि काण्ड

विरोध की आँधी बहुत तेज़ थी। कुबेर नाथ श्रीवास्तव ने इसका जिक्र करते हुए लिखा है :

"आर्य समाज से अलग होकर आपने 'साधु' पत्रिका शुरू की। जिसमें आर्य समाज की कमियाँ दूर करने के उद्देश्य से कुछ लेख लिखे। किंतु सुधार करना तो दूर है, आर्य समाजियों में भारी खलबली मच गई और उन्होंने 'साधु' पत्रिका के पुस्तकालय में आग लगा दी। जिससे बहुत भारी और अपूर्णीय क्षति हुई।"[66]

शायद यही कारण है कि अब महाशय शिव की आरम्भिक रचनाएं अप्राप्य हो गई हैं।

समाज सुधार सम्बन्धी समस्याएं कटुतापूर्ण संघर्ष से हल नहीं हुआ करतीं और फिर महाशय शिव का यह दावा था कि उनका मार्ग शांति, प्रेम और भाई-चारे का मार्ग है। इसलिए उन्होंने स्वयं अपने व्यवहार में परिवर्तन किया। 'आर्य समाज' शीर्षक से उन्होंने एक लेख प्रकाशित किया। उसमें कहा कि :

"प्रबुद्ध हिंदू कभी आर्य समाज का शत्रु नहीं हो सकता। वह मन-प्राण से उसकी सफलता की आकांक्षा करता है। जो दोष है, वह सिर्फ कार्यकर्ताओं में है।" इस प्रकार के प्रयासों से अंततोगत्वा जो सफलता मिली उसका उल्लेख करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है :

"मैंने घास-मांस का झगड़ा मिटाया। मेरी रचनाओं से आर्य समाज का वर्ग सद्मार्ग पर आया। बहुत-सी भ्रांतियाँ दूर हो गईं।"[67]

अन्य पत्र-पत्रिकाएं

अकेली 'साधु' पत्रिका समय की मांगों को पूरा नहीं कर सकती थी। इसलिए

उन्होंने एक के बाद दूसरे कई पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन किया, जो कि इस प्रकार हैं।

उर्दू में जनवरी, 1908 से 'मार्तण्ड' और 1910 से 'सरस्वती भंडार' पत्रिकाएं प्रकाशित कीं।

हिंदी में 1909 से 'तत्वदर्शी' और 1910 से 'लक्ष्मी भंडार' इसके साथ गुरुमुखी लिपि पंजाबी में जनवरी, 1910 से 'पंजाबी सूरमा' का प्रकाशन किया।

ये सब मासिक पत्र थे और लाहौर से निकलते थे। इन सब में वे स्वयं अपने लेख और रचनाएं प्रकाशित करते थे।

यह कहा जा चुका है कि महाशय शिव ने हिंदू विश्वास और हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए उर्दू भाषा को माध्यम के रूप में अपनाया था। अपने हिंदी पत्र के परिचय में उन्होंने आग्रह के साथ लिखा है :

"मैं हिंदी में सबसे बड़ा धार्मिक पत्र 'तत्वदर्शी' निकालता हूँ किताबें लिखता हूँ। अपने उर्दू के पत्रों और लेखों के माध्यम से इसका प्रचार कर रहा हूँ। तुम भी जरा हाथ-पाँव हिलाओ। हिंदी में बोलो, हिंदी में सुनो, हिंदी में पढ़ो और पढ़ाओ।"[68]

'पंजाबी सूरमा' न आर्य समाज का है, न सिखों का है, बल्कि वह सारे हिंदुओं का है, जिसमें सिख और आर्य समाजी दोनों शामिल हैं। वह किसी सोसाइटी का आर्गन भी नहीं है सिर्फ़ दस बादशाहों की रूहानी तालीम के प्रचार-प्रसार के लिए निकाला है और जिसे हमारे लिटरेचर को पढ़ने का मौका मिला है, वे जानते हैं कि हम किन विचारों के व्यक्ति हैं।"[69]

विदेशों के राजदूत रवाना हुए तो शिवव्रत लाल की हिदायत पर 'साधु' के मैनेजर ने जून, 1911 के अंक में यह सूचना प्रकाशित की :

"'पंजाबी सूरमा' एक आर्य समाजी महाशय को यों ही दे दिया गया है। जिन के विचारों से सम्पादक का कतई कोई सम्बन्ध नहीं है। पाठकगण याद रखें कि 'पंजाबी सूरमा' गुरुमुखी से 'साधु' का अब कोई सम्बन्ध नहीं है।"[70]

सात

यात्रा

महाशय शिव को कुछ समय के संघर्ष बाद सुख-शांति मिली। अब शांति आश्रम लाहौर के मैनेजर स्वामी शिवानंद ने उन्हें लाहौर से अमरीका जाने के लिए प्रेरित किया। वे उनके अनन्य मित्र थे। महाशय शिव के मन में भी लम्बे समय से जापान और अमरीका देखने की इच्छा थी। वे चाहते थे कि इन लेखों की प्रगति से 'मार्तण्ड' के पाठकों को अवगत करायें। उन्होंने तैयारी शुरू की लेकिन पिताजी के देहावसान के कारण कुछ विलम्ब हो गया। आखिर 2 अगस्त, 1911 को वे लाहौर से निकले। कलकत्ता पहुँचे। वहाँ से 22 अक्टूबर को जहाज से रंगून को प्रस्थान किया तीसरे दिन वहाँ पहुँचे। दो-तीन सैर करके फिर चले और 31 को पनांग पहुँचे। उनका कथन है :

"जो लोग हिंदुस्तान से आये थे उनमें ज्यादातर जौनपुर, आजमगढ़ के रहने वाले मुसलमान थे। अनुभव बताता है कि हिंदुओं की अपेक्षा मुसलमान ज़्यादा साहसी हैं। हिंदुओं में सिर्फ़ पंजाबी सिख बड़े कठोर और दुस्साहसी देखे जाते हैं।"[71]

सिंगापुर, जावा होते हुए 22 नवम्बर को हांगकांग पहुँचे। रास्ते में एक जापानी ने कहा कि हिंदुस्तान जैसा बड़ा देश अंग्रेज़ों के हाथों में न रह पायेगा। महाशय शिव ने हंस कर उत्तर दिया :

"हम हिंदुओं का यह ख़्याल नहीं है। हम अंग्रेज़ी हुकूमत को वरदान समझते हैं। अगर आज अंग्रेज़ चले जायें तो हम बहुत परेशान हो जायेंगे कहीं के न रहेंगे।"[72]

चीन पहुँचकर वहाँ के हालात की जानकारी हुई। महाशय शिव अपनी एक पत्रिका में यह लिख चुके थे कि लेखन-कला का आरम्भ सबसे पहले भारत में हुआ लेकिन अब उन्हें मालूम हुआ कि :

"लेखन कला के आविष्कर्ता भी चीनी हैं। लेखन-कला का चलन हमारे देश में बहुत पुराना नहीं है। पहले लोग वेदों को कण्ठस्थ करते थे। प्राचीन संस्कृत कोशों में सुई और लेखनी के लिए कोई शब्द नहीं है। इससे मालूम होता है कि ये पुरानी खोजें नहीं हैं।"[73]

जापान गये और फिर वहाँ से अमरीका के लिए रवाना हुए। लिखते हैं :

"मैं यहाँ सेन फ्रांसिस्को में 22 दिसम्बर, 1911 को पहुँच गया था। जहाज

से तमाम हिंदू और चीनियों को एक टापू पर ले गये जहाँ यात्रियों का अस्पताल है। बहुतों को वापस कर दिया। हिंदुओं में से सिर्फ़ मैं ही हूँ जिसे बारह दिन के बाद शहर में जाने की इजाज़त मिली। आपसे क्या कहूँ मैंने कितना कष्ट सहा है। अब हिंदुओं को अमरीका नहीं जाना चाहिए। मैं कभी-कभी हैरान होता हूँ कि मालिक ने मुझे यहाँ क्यों भेजा ?"[74]

ऊपर के विवरण से अनुमान किया जा सकता है कि यह एक संक्षिप्त यात्रा थी। इस अमरीका यात्रा के बारे में महाशय शिव ने लिखा है कि :

"मैं जब अमरीका गया था, वहाँ के कई पत्रकार मुझसे आकर मिले। मुझे विज्ञापन देने के लिए प्रेरित किया ताकि अधिक से अधिक लोग मेरे विचारों को जान सकें। मुझे यह ढंग पसंद नहीं है। आध्यात्मिक विचारों को विज्ञापनबाजी से प्रचारित करना निषिद्ध है। और आम सभाओं में भाषण देने की भी गुरु की ओर से अनुमति नहीं है।"[75]

इस यात्रा के दौरान उन्होंने जो पुस्तकें लिखीं उनमें से एक 'पंथ संदेश' है। इसके बारे में स्वयं बताया है कि :

"यह पंडित प्रेमशंकर जी की अंग्रेज़ी पुस्तक 'डिस्कोर्सेज़ ऑन राधास्वामी फ़ेथ' की शैली में सत्य के जिज्ञासुओं के लिए लिखी गई है। अमरीका यात्रा के दौरान अंग्रेज़ी में संत मत पर जो कुछ लिखा था, इस 'पंथ संदेश' में है।"[76]

सेन फ्रांसिस्को के जापान बुद्धिस्ट मिशन में बुद्ध धर्म का बौद्धिक पहलू, और 'बुद्ध धर्म का दार्शनिक पहलू' शीर्षक से दो व्याख्यान दिये। ये पहले 'साधु' में और फिर पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। चौथी पुस्तक 'सच्चा और अम्ली योग' भी इसी क्रम में लिखी गई।

मेहर देहलवी

जिस समय महाशय शिव चर्चित यात्रा के लिए रवाना हुए जनाब मोतीलाल 'मुख्तार' के शब्दों में :

"'साधु' का कारखाना आदरणीय मुंशी सूरज नारायण साहब मेहर देहलवी के सुपुर्द कर गये थे। जो आपके खास दोस्तों में से थे।"[77]

मेहर साहब गद्य और पद्य दोनों में लिखते थे। उनके बारे में महाशय शिव ने कहा है :

"मुंशी सूरज नारायण साहब मेरे दोस्त हैं। मैं उन्हें अपना बुजुर्ग मानता हूँ और दिल से इज्ज़त करता हूँ। वे आयु में मुझसे बड़े हैं। जब मिलते हैं, मुझसे

कहा करते हैं आप आचार्य बनकर जिज्ञासुओं का मार्ग दर्शन करें ताकि हजारों को लाभ हो सके।"[78]

महर्षि

महाशय शिव के यात्रा पर निकल जाने के बाद 'साधु' पत्रिका के सम्पादन का दायित्व मेहर साहब ने सम्भाल लिया था। लिखते हैं :

"अमरीका जाने से पूर्व महर्षि शिव ने फकीर मेहर को एक वचन दिया था कि वहाँ से अपने रोचक यात्रा संस्मरण भेजते रहेंगे।"[79]

इन हालात को मेहर साहब ने 'साधु' में 'महर्षि शिव का सफ़रनामा' शीर्षक से धारावाहिक प्रकाशित किया था। मेहर साहब ने उन्हें महर्षि की उपाधि दी और इसके बाद वे इसी नाम से विख्यात हो गये।

महर्षि जी ने देश वापस लौटने के बाद कई यात्रा वृत्तांत लिखे। अफ़सोस है कि अब उनमें से सिर्फ़ ये नाम मालूम हो सके :

तारीख़-ए-अमरीका, जापान, यात्रा-संदेश, जापान और उसकी हैरत अंगेज़ तरक़्क़ी।

यह स्पष्ट है कि महर्षि जी के ज्ञान और आध्यात्मिक व्यक्तित्व से उपर्युक्त सभी देशों के बहुत से लोग प्रभावित हुए होंगे। लेकिन अब सिर्फ़ कुछ के नाम उपलब्ध हैं। जापान की एक महिला व्याट्रस सुजूकी उर्फ़ नीली कमलिनी ने 18 नवम्बर, 1917 को महर्षि जी के नाम एक पत्र में लिखा है :

"जब आप दूसरी बार जापान आये तो मुझसे भेंट न हो सकी।"[80]

इससे स्पष्ट होता है कि महर्षि जी ने जापान की दो यात्राएं की थीं। शायद सेन फ्रांसिस्को (अमरीका) से वापसी में जापान गये होंगे।

एक अमरीकी महिला मिस मेरिया ओरियल ने सेन फ्रांसिस्को से महर्षि जी से 28 जुलाई, 1913 को मालूम किया था कि :

"क्या आप 1915 में पश्चिम की यात्रा पर भी आयेंगे ?"[81]

शायद महर्षि जी का इरादा रहा हो लेकिन दोबारा वे अमरीका नहीं गये थे।

आठ

नई पत्र-पत्रिकाएँ

देश लौटने के बाद महर्षि जी ने अपने शैक्षिक और समाज सुधार सम्बन्धी कार्यों को नये सिरे से व्यवस्था दी। अब वे वास्तविक अर्थों में विश्वद्रष्टा व्यक्ति थे। उनके ज्ञान, सामाजिक निरीक्षण और अनुभवों में एक असाधारण परिवर्तन दिखाई देता था। परिणामस्वरूप उनके सोच ही नहीं कार्य-पद्धति में भी परिष्कार आ गया था। लाहौर पहुँच कर उन्होंने एक के बाद दूसरे तीन पत्रिकाएँ आरम्भ कीं, यथा – संत संदेश, विज्ञानी और वेदांत मैगज़ीन। शायद अंतिम पत्रिका कुछ समय 'वेदांत अमृत वाणी' के नाम से भी निकली। इन सभी पत्रिकाओं में सिर्फ़ महर्षि जी की रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं।

अख़्तर साहब

मुंशी गौरी शंकर लाल 'अख़्तर' महर्षि जी के दामाद थे। वे भी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने शैक्षिक कार्यों में महर्षि जी का जैसा सहयोग किया, इतिहास में इसका उदाहरण नहीं मिलता है। अख़्तर साहब ने उर्दू में कोई आधा दर्जन पत्र-पत्रिकाएँ निकाली थीं। उनकी आरम्भिक पत्रिकाओं में 'शिव शम्भू', 'धुरंधर', 'फ़साना', 'नावेल मैगज़ीन' साहित्यिक दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। अंतिम पत्रिका बाद में 'नावलिस्तान' नाम से निकलती रही। अख़्तर साहब को कहानी, उपन्यास और नाटकों से विशेष लगाव था और उन्होंने उर्दू में इन विधाओं को आगे बढ़ाने के बहुत प्रयास किये थे। रतन नाथ सरशार की उत्कृष्टतम कृति 'फ़िसाने-आजाद' के कई अंश अख़्तर साहब के 'शिव शम्भू' में छपकर चर्चित हो चुके थे। वह ज़माना था जब बंगला में बंकिम चंद्र के सुधारवादी उपन्यासों की धूम मची हुई थी। अख़्तर साहब ने उनके कुछ उपन्यासों का उर्दू अनुवाद किया और कई का अनुवाद महर्षि जी से भी कराया।

उपन्यास रचना

महर्षि जी ने अपनी पत्नी के आग्रह पर उपन्यास लिखने शुरू किये थे। वे स्वयं भी कहते थे कि :

"उपन्यास के लेखन में मेरी दक्षता नहीं है। मैंने सिर्फ़ किस्सागोई का फ़र्ज़ अपने ज़िम्मे लिया है।"[82]

अख़्तर साहब की फ़र्माइश पर महर्षि जी उपन्यास लेखन की ओर प्रवृत्त हुए थे। लिखते हैं :

"शुक्र है अब बंगला उपन्यासों के उर्दू अनुवाद में अख़्तर साहब की रुचि पैदा हुई है। मैं भी अपनी फुर्सत और योग्यतानुसार ज्यों का त्यों उनका हाथ बंटाने लगा हूँ।"[83]

इस अनुवाद-कार्य में महर्षि जी की रुचि नहीं थी लेकिन वे उपन्यास के महत्व को समझते थे। इसलिए उन्होंने स्वयं बड़ी संख्या में उपन्यास लिखे। एक उपन्यास की भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है :

"मैं न उपन्यासकार हूँ और न इस कला की अपेक्षाओं की ओर ही मैंने कभी ध्यान दिया है। किस्से-कहानियों को कहने-सुनने का रिवाज़ दुनिया में हमेशा से है और हमेशा रहेगा। यह मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है जो विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति पाती है। यदि इस कला को यथेष्ट रूप में आगे बढ़ाया जाये तो नैतिक शिक्षा और समाज सुधार सम्बन्धी कार्यों के लिए इसका किसी भी अन्य साधन की तुलना में बेहतर इस्तेमाल किया जा सकता है। एक सहज प्रयास है जिसकी मदद से कठिन से कठिन और गूढ़ से गूढ़ विषयों को सुगमता से समझा और समझाया जा सकता है। जहाँ तक इतिहास साक्षी है, हमारे देश में शुरू से ही किस्सागोई और कथा-कथन से काम लिया जाता था। कथा-सरितसागर, पंचतंत्र और इस प्रकार के अनेक संस्कृत ग्रंथ इस बात के प्रमाण हैं। यह परम्परा अन्य देशों में भी रही है। लेकिन इसे लिपिबद्ध करने का श्रेय भारत को ही जाता है।

यूरोप ने ज्ञान की अन्य शाखाओं की भाँति इस कला को भी आश्चर्यजनक रूप से समुन्नत किया जो छापाखानों के कारण हज़ारों रूपों में आज हमारे सामने मौजूद है। उन देशों के लोग इस कला में विशेष रुचि रखते हैं। हमारे यहाँ और बातों की तरह इसकी भी बड़ी कमी है। बंगाल के अलावा देश का कोई भी भाग अच्छे उपन्यासकारों को जन्म नहीं दे सका है। हिंदुस्तानी भाषा के पुस्तकालय अब भी उपन्यासों से खाली हैं। लोग अनुवाद करते हैं। अंग्रेज़ों के अनुकरण पर उपन्यासों के नाम पर क़िस्से लिखते हैं।"[84]

उपन्यास और क़िस्से के अंतर को जान लेना जरूरी है। दूसरी बड़ी बात यह है कि उन्होंने इस उपयोगी विद्या से काम लेने की सचेत रूप से कोशिश की। कहते हैं कि :

"मैंने ही पंजाब में आकर सबसे पहले नैतिकता से गिरे हुए और अश्लील उपन्यासों को पढ़ने की महामारी को रोका।"[85]

उन्होंने सच्ची या ऐतिहासिक घटनाओं को अपने उपन्यासों का आधार बनाया। इन घटनाओं को रोचक बनाने के लिए उन्होंने कहावतों का इस्तेमाल किया।

उनका विचार है कि :

"घटनाएं तो घटनाएं ही हैं। उनके सच होने में कोई संदेह नहीं। कथाकार इन घटनाओं में निजी अनुभवों को भी शामिल कर देता है। और साथ-साथ ही कहीं-कहीं कहावतों से भी काम लेता है। ताकि पाठक के मन को यह सच्चाई गहरे में जाकर प्रभावित कर सके।"[86]

शाही लकड़हारा

'शाही लकड़हारा' महर्षि जी का पहला उपन्यास है। यह पहली बार अख़्तर साहब की नावेल मैगज़ीन में छपा था। लेखक ने इसकी भूमिका 20 मार्च, 1913 को लाहौर में लिखी थी। उसका एक अंश है :

"अमरीका की सैर से वापस आ रहा था। हांगकांग में जहाज़ बदला गया। सैकंड क्लास में पंडित काशीनाथ शर्मा बनारस निवासी भी थे। उन्होंने मेरे आग्रह पर यह क़िस्सा सुनाया था। लाहौर पहुँचकर मैंने यह पंडित करमचंद जी को लिखवा दिया।"

इस क़िस्से को पुस्तक का रूप देने में अख़्तर साहब का हाथ भी था। एक विज्ञापन में ये पंक्तियाँ भी दी गई हैं :

"शाही लकड़हारा नामी मशहूरो-मारूफ नावेल का तर्जुमा एडीटर शिव शम्भू (अख़्तर साहब) ने निहायत ही सेहत और सफ़ाई के साथ सरल भाषा में किया है।"[87]

इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि अधिकांश में न सिर्फ़ काट-छाँट बल्कि समय-समय पर कुछ जोड़ा भी जाता रहा है। आर्य स्टीम प्रेस लाहौर का संस्करण 306 पृष्ठों का था। पाँचवां, छठा संस्करण सिर्फ़ 206 पृष्ठों में समा गया। यह उपन्यास हिंदी में भी छप चुका है। और जसवंत पिक्चर्स बम्बई ने 1933 में इसकी फ़िल्म भी बनाई थी। जिसके संवाद अख़्तर साहब ने लिखे थे।

महर्षि जी ने 'शाही' की श्रृंखला में लगभग उन्नीस उपन्यास लिखे थे।[88] अख़्तर साहब का कहना था कि :

"इस कथा-लेखन के दौर में कहानी और उपन्यासों की भरमार है। अच्छे उपन्यास सिर्फ़ उंगलियों पर गिने जा सकते हैं।"

और इन चंद में महर्षि जी के ये उपन्यास भी हैं।

उपन्यास की परिकल्पना में समय के अनुसार परिवर्तन आया। उस आरम्भिक दौर में परिवर्तन की गति ज़्यादा तीव्र थी। अतएव महर्षि जी ने जब 'मोती' की श्रृंखला में उन्नीस उपन्यास लिखे तो उन्होंने खुद अपने पहले उपन्यास को 'क़िस्सा'

कहा। समय के साथ विचारों में भी परिवर्तन आता है। बाद के ज़माने में उपन्यास की परिकल्पना और प्रतिमानों में काफी अंतर आ गया।

कायस्थ सभा

अब महर्षि जी रुचि संगठन सम्बन्धी कार्यों की ओर बढ़ी। उनके मन में देशवासियों के लिए दर्द था वह उन्हें नये से नये सांगठनिक कार्यों की ओर प्रेरित कर रहा था। संयोगवश 1921 ई. में वे अपने गाँव पूरा कानून गोयान गये। उन्होंने एक आल इंडिया खरे कायस्थ कांफ्रेंस की नींव डाली। उसमें हज़ारों लोगों ने भागीदारी की। बाद में महर्षि जी को इस ओर ध्यान देने का अवसर न मिल सका।

नौ

सोसाइटी

महर्षि जी ने आरम्भ से जो शैक्षिक और समाज सुधार सम्बन्धी कार्यक्रम बना रखा था, अब उन्हें इस कार्यक्रम को व्यवस्थित रूप देने की चिंता थी। इस उद्देश्य से लाहौर में राधास्वामी जनरल लिटरेचर सोसाइटी की स्थापना की गई। जिसके आजीवन अध्यक्ष स्वयं महर्षि जी थे। मुंशी गौरी शंकर लाल 'अख़्तर' ने इसके सचिव (मानद) का दायित्व सम्भाला। इन दोनों के अतिरिक्त सोसाइटी के अन्य सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं :

ठाकुर लाल त्रिलोकचंद	–	रंगून
पंडित फक़ीर चंद	–	बसरा
लाला बरकत राम साहनी	–	
मास्टर कुँवर बहादुर	–	गोरखपुर
ब्रज मोहन सहाय	–	गोरखपुर
ठाकुर केदार सिंह	–	हतक
ठाकुर नारायण सिंह	–	हैदराबाद
मास्टर शाम जस राम	–	दिल्ली

सोसायटी का अपना एक कारखाना और बुक डिपो था। लाला दीवान चंद साहब इस कारखाने के मैनेजर थे। इस प्रकार महर्षि जी की पुस्तक 'सच्चा सनातन धर्म' 1918 में उन्होंने राधास्वामी कारख़ाना लाहौर से प्रकाशित की थी।

इस संगठन से कार्य की प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो गया। अब सोसायटी ने एक नियमित मिशन के रूप में कार्य करना आरम्भ कर दिया। जिसके पास 'विज्ञानी' आदि पत्र-पत्रिकाएं भी थीं। अब कार्य को देश की सीमाओं से बाहर विदेश में आगे बढ़ाने की योजनाएं बनाई गईं। इस उद्देश्य के तहत आध्यात्मिक शिक्षा हेतु निम्नलिखित केन्द्र बनाये गये :

(अ) देश में –

1. हकीम उत्तम चंद साहब, ठारू शाह – सिंध
2. लाला बरकत राम साहब साहनी, ग्वालियर

(ब) विदेश में –

1. इराक़ और अरब में – पंडित फ़कीर चंद साहब – बगदाद
2. बर्मा – लाला त्रिलोकचंद – रंगून

ये महानुभाव महर्षि जी से अनुमति लेकर उनकी सेवा में उपस्थित होते थे।

महर्षि जी ने अपने श्रद्धालुओं और खासो-आम से यह अपील की थी कि वे निम्नलिखित महानुभाव से भी लाभ उठायें :

1. आगरा दयाल बाग, लाल आनंद स्वरूप साहब
2. पंजाब, डेरा बाबा जमील सिंह साहब व्यास
   और सरदार सावन सिंह साहब
3. इलाहाबाद – राय साहब बाबू माधो प्रसाद सिंह

साहब और राय साहब अयोध्या प्रसाद साहब पंडित फ़क़ीर चंद जी 1917 ई. के मध्य तक बसरा में रहे। ये सब महानुभाव सत्य के जिज्ञासुओं का मार्गदर्शन करते रहे थे। महर्षि जी का कहना है कि :

"फिर पुनः निवेदन करता हूँ कि जिन साहब की रुचि हो, अपनी सुविधानुसार इन साहिबान से सम्पर्क करें। मुझे सिर्फ़ आर्य समाज, वेदांतियों और सूफियों के साथ सत्संग के लिए छोड़ दें।"

दाता दयाल

अब महर्षि एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन के संरक्षक की हैसियत प्राप्त कर चुके थे। उन्हें 'मुशिर्दे-कामिल' (ब्रह्मज्ञानी) स्वीकार कर लिया गया था। ठाकुर नंदू सिंह जी ने उन्हें दाता दयाल की उपाधि से विभूषित किया और उस समय से उनकी निम्न उपाधियाँ विख्यात हो गईं :

परम पुरुष, पूर्ण धनी, हुज़ूर मुअल्ला-ओ-मुक़द्दस, दाता दयाल, महर्षि शिवव्रत लालाजी वर्मन, महाराज।

दक्षिण में

उत्तर भारत में पूरी तरह प्रभुत्व प्राप्त कर लेने के बाद दाता दयाल ने दक्षिण की ओर ध्यान दिया। ठाकुर नंदू सिंह ने लिखा है कि :

"1918 ई॰ में आप हैदराबाद दकन तशरीफ़ लाये और आध्यात्मिक शिक्षा का कार्यक्रम चलाया। हैदराबाद ख़ास के अलावा रियासत के दूसरे ज़िलों में भी सत्संग की बुनियाद डाली।"[89]

दक्षिण का क्षेत्र अपरिचित था। वहाँ के विभिन्न स्थानों की सैर करते हुए हनमकुंडा पहुँचे और वारंगल के क़िले और देवल आदि को देखा। 1919 में मद्रास होते हुए सीलोन (श्री लंका) तशरीफ़ लाये।[90] श्री डी. पी. सिंह ने इसे पहला सफ़र बताया है। इसलिए ख़याल किया जा सकता है कि इसके बाद भी दाता दयाल ने श्री लंका की यात्रा की थी।

वापसी में वे फिर हनमकुंडा आये। वहाँ मुहल्ला राजपूत बाड़ी में एक मकान किराये पर लिया। वहीं मकान दक्षिण का पहला केंद्र बना। बाद में उस मकान को ख़रीद लिया गया। उस मकान में नीम के जिस वृक्ष के नीचे दाता दयाल उपदेश देते थे उसे सुरक्षित रखा गया है। एक बड़ा भवन वहाँ बना दिया गया है। जिसके एक सिरे पर तीन कमरे हैं। बीच के छोटे से कमरे में दाता दयाल की प्रतिमा है। बाईं ओर के अपेक्षाकृत बड़े कमरे में पुस्तकालय है और दाहिनी ओर का कमरा गुरू से भेंट के लिए सुरक्षित है।

दाता दयाल ने हनमकुंडा के आस-पड़ोस के स्थानों जैसे करीम नगर, उस्मानाबाद, निज़ामाबाद, रायचूर आदि की यात्रा भी की। ठाकुर नंदू सिंह का कहना है कि :

"आप जीवन के अंतिम बीस वर्ष 1918 से 1938 तक लगातार इस सूबे में हर वर्ष छः महीने के लिए मौजूद रहते थे और सत्संग कराते रहे।"[91]

आश्यर्च यह है कि इस वर्ष की लम्बी अवधि में दक्षिण भारत केन्द्रों से दाता दयाल ने कोई भी पत्र-पत्रिका नहीं निकाली। अलबत्ता वहाँ कई पुस्तकों की रचना ज़रूर की।

हितोपदेश

यह दक्षिण प्रवास की रचनाओं में से है। ठाकुर नंदू सिंह को महर्षि जी ने अपना पुत्र बना लिया था। उनकी पत्नी का निधन हुआ तो महर्षि जी ने 1923 ई. में हैदराबाद में उनका दूसरा विवाह स्वयं करा दिया। अपनी नई बहूरानी गजराबाई के लिए इस 'हितोपदेश' पुस्तक की रचना की। इसकी भूमिका में महर्षि जी ने कहा है कि :

"आशा है, दुल्हन इसे प्रेम से पढ़ेगी और जब छप जायेगी तो पाठक भी इससे लाभान्वित होंगे।"

दस

विभिन्न विधाएँ

दाता दयाल केवल धार्मिक नेता या विद्वान नहीं थे। वे एक जागरूक विश्वद्रष्टा और सजग व्यक्ति थे। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की भी उन्हें जानकारी थी। उदाहरण के लिए मिसमैरिज़्म से सम्बन्धित उन्हें 'शाही जादूगरनी' नामक एक उपन्यास लिखा था। उनका एक उपन्यास 'झलकदार मोती' योग-विद्या से सम्बन्धित है। उन्होंने कई जासूसी उपन्यास भी लिखे हैं। उनमें से 'दमदार मोती' और 'होशियार मोती' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बल्कि दूसरे उपन्यास में ठगों, डाकुओं और चोरों की क्रियाओं का जैसा वर्णन किया है, वह आश्चर्यजनक है।

आंदोलन

एक जागरूक व्यक्ति के रूप में दाता दयाल अपने ज़माने के राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय धार्मिक, राजनैतिक राष्ट्रीय आंदालनों से भी परिचित थे। शुद्धि और संगठन के आंदोलनों से सम्बन्धित जो पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं उनमें से 'जंगदार मोती' और 'मल्काना राजपूत' उल्लेखनीय हैं। इनसे ज्ञात होता है कि वे शुद्धि के पक्षधर थे लेकिन उनका दृष्टिकोण प्रमाणिक और संतुलित था। वे 'शुद्धि' उस दौर के संकीर्ण अर्थों में ग्रहण नहीं करते थे। वे इस आंदोलन का उपयोग रचनात्मक कार्यों के लिए करना चाहते थे। 'रंगदार मोती' में कहा गया है कि :

"योगी के वेश में गायत्री नामक देवी ने उन्हें धार्मिक शिक्षा देकर उनकी काया पलट कर दी। ब्राह्मणों की शुद्धि करके उन्हें मुसहर बना दिया। उस देवी ने अपना विवाह एक नवागत मुसहर से कर लिया।"

इससे अनुमान होता है कि शुद्धि से वे देश में झगड़े पैदा करने के बजाय ख़ुद हिंदुओं के आचरण में सुधार लाना चाहते थे।

बोल्शेविज़्म का भी उस ज़माने में बहुत चर्चा था। 'अमर सिंह राठौर' नामक उपन्यास में दाता दयाल ने यह बताया है कि :

"बोल्शेविज़्म क्या है ? इससे हिंदुस्तान विशेष रूप से हिंदुओं को क्या हानि पहुँचने की सम्भावना है।"

राजनीति

दाता दयाल अपने युग में हर प्रकार से एक प्रभावशाली व्यक्तित्व थे। इसलिए राजनेताओं ने कांग्रेस के लिए उनका समर्थन चाहा और यह इच्छा व्यक्त की कि वे खुलकर सामने आ जायें। स्वयं कहा है :

"1920 ई. में अमृतसर की कांग्रेस के अवसर पर मेरे मित्रों ने मुझे बार-बार प्रेरित किया कि मैं खुलकर राजनीतिक मैदान में काम करूँ। मैंने कहा, भाई अब ज़िंदगी अपना मिज़ाज बदलने की ख़्वाहिश मंद नहीं है। जिसमें लगे हैं, वही काफ़ी है।"[92]

यह तो दाता दयाल का विशेष स्वभाव था कि उन्होंने इस बात को स्वीकार नहीं किया लेकिन यह सच है कि वे कांग्रेस की नीतियों और कार्य पद्धति से सहमत थे। 1920 में कांग्रेस और मुस्लिम लीग सामूहिक रूप से असहयोग का निर्णय लिया था। दाता दयाल ने 'शाही तालिब-ए-इल्म या अदम ताव्वुन' शीर्षक से एक उपन्यास लिखा। उसमें उन्होंने बताया कि :

"नॉन को आपरेशन का हथियार दरअसल इतना तेज़ और मज़बूत है कि काम में लेने से यह कुंद नहीं होता।"

उस जमाने में कांग्रेस ने स्वराज का प्रस्ताव पेश किया। दाता दयाल ने अपनी कृतियों के माध्यम से इस प्रस्ताव का समर्थन किया। उनके उपन्यास का शीर्षक ही "शाही स्वराज" है। उपन्यास 'बापा रावल' में भी इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है। इस सिलसिले में दाता दयाल का कहना है :

"हमारा कौमी आदर्श, पोलिटिकल या तिजारती आज़ादी हमारा आदर्श नहीं है। हमारा आदर्श सिर्फ़ धर्म है।"[93]

अपनी एक कृति में भी उन्होंने इसी दृष्टिकोण को इस तरह प्रस्तुत किया है :

"इंगलिश क़ौम का आइडियल तिजारत है, फ्रांस का साइंस, जापान और चीन का शिल्प-कला है, हिंदुओं का आइडियल धर्म है।"[94]

शायद यही कारण था कि एक बड़ा समुदाय 'होमरूल' को लागू करने पर कायम रहा और पूर्ण स्वराज को प्राप्त करने की प्रतिज्ञा पर अटल रहा।

धाम

इतनी प्रगति कर लेने के बाद दाता दयाल यदि अपने असली वतन अर्थात पूरा कानून गोयान को विस्मृत कर देते तो बड़े आश्चर्य और दुःख की बात होती।

वे इस सच्चाई को भली-भाँति समझते थे कि मूल से अलग होने के बाद कोई वृक्ष हरा-भरा नहीं रह सकता। वे हमेशा अपने क्षेत्र की परिस्थितियों से अवगत रहे और दूर-दराज़ के क्षेत्रों में रहने के बावजूद वे अपने वतन की उन्नति के लिए प्रयासरत रहे। 1921 ई. में उन्होंने वहाँ पर राधास्वामी की नींव रखी और वहाँ ठहरे भी। श्री सौमित्र कुमार ने इस प्रसंग के बारे में लिखा है :

"लाहौर में तमाम किताबों का स्टाक लाला चम्पत राय, लाला दीवान चंद आदि के सुपुर्द करके वतन रवाना, हुए। ठाकुर नंदू सिंह और सूरत सिंह साहबान साथ थे। कानून गोयान पूरा में पहुँचकर कुछ दिन चाचा जी (ठाकुर सूरज नारायण सिंह) के घर में ठहरे। नई इमारत की नींव रखी गई और काम शुरू हो गया तो गोरखपुर के सतसंगियों के आग्रह पर महर्षि वहाँ तशरीफ़ ले गये। निर्माण का कार्य चाचा जी के सुपुर्द किया गया था। गोरखपुर से वापसी पर दिसम्बर, 1925 में महर्षि जी ने भंडारा किया। बहुत बड़ी संख्या में सत्संगी दर्शन के लिए आये। सतसंगियों के अनुरोध पर उनके ठहरने के लिए भवन की व्यवस्था की गई। राशि उपलब्ध कराई गई और अनेक कमरों के निर्माण का सिलसिला शुरू हो गया।"[95]

पत्र-पत्रिकाएँ

बनारस के बोलचाल में हिंदी का चलन ज़्यादा था। इसलिए वहाँ से प्रकाशित होने वाले पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी का व्यवहार प्रचुर मात्रा मे किया गया लेकिन उर्दू का परित्याग भी नहीं किया गया। 'शाही जादूगरनी' (दिसम्बर, 1918 में प्रकाशित) के एक विज्ञापन में है :

"'विज्ञानी' अपना काम करके इस महीने से रुख़सत होता है। अब 'संत' की बारी आवेगी मगर वह बड़े-बड़े ग्रंथों का सिलसिला होगा।"[96]

सौमित्र कुमार जी के अनुसार 'संत' का प्रकाशन ठाकुर नंदू सिंह जी की ओर से किया गया लेकिन कुछ ही समय बाद इसका कार्यालय इलाहाबाद स्थानांतरित कर दिया गया। ठाकुर साहब से सवाल-जवाब के लिए ही 'संत संजोग' नाम से एक सिलसिला शुरू किया गया। फिर नवम्बर, 1924 में धाम से एक उर्दू मासिक 'अवधूत' निकाला गया। दरअसल उर्दू ही उस दौर में देश की जन-भाषा थी। चाहे वह धार्मिक आंदोलन हो या राजनीतिक आंदोलन उस दौर में उर्दू स दामन बचाकर सफल नहीं हो सकता था। 'अवधूत' पत्रिका अंतिम समय में लाहौर स्थानांतरित हो गई। वहाँ चंगड़ मुहल्ले में इसका कार्यालय था और नंदकिशोर इसके प्रबंधक थे।

श्री मोती लाल 'मुख़्तार' ने जनवरी 1921 में धाम से 'सतसंग' नाम उर्दू

में ही एक मासिक पत्रिका शुरू की। बाद में इसका कार्यालय गोरखपुर चला गया। इस पत्रिका में दाता दयाल के वचन और उपदेश प्रकाशित होते थे।

दरअसल धाम शहर से दूर था। जिस ज़माने में दातादयाल वहाँ पहुँचते थे, आवागमन का सिलसिला शुरू हो जाता था। लेकिन यह रौनक अस्थायी होती थी। वहाँ से पुस्तकों और पत्रिकाओं का प्रकाशन आसान नहीं था। प्रयोग किये गये लेकिन सफलता नहीं मिली।

वक़्फ़

महर्षि जी की प्रबंध-क्षमता भी सराहनीय है। जनवरी, 1927 में धाम के लिए एक ट्रस्ट बनाया गया। राधास्वामी जनरल सत्संग के तमाम प्रबंध उससे जोड़ दिये गये। बाद के ज़माने में धाम के संसाधनों में वृद्धि हुई। लेकिन उनका विवरण यहाँ अनावश्यक है।

ग्यारह

लाहौर में

ठाकुर नंदू सिंह का कहना है कि सन् 1921 में दाता दयाल ने लाहौर को छोड़ दिया। यही बात दूसरी जंगह उन्होंने इस तरह लिखी है :

"1921 ई. महर्षि जी महाराज लाहौर छोड़कर पूरा कानून गोयान चले आये।"[97]

लेकिन घटनाएँ इस बात को सही सिद्ध नहीं करतीं। वे लाहौर में काफ़ी समय तक ठहरे थे। इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए पूरा क़ानून गोयान में जाकर बस जाना उनकी दिवंगता पत्नी की वसीयत के विरुद्ध था। दाता दयाल के लाहौर प्रवास के विषय सौमित्र कुमार जी का मत है कि :

"सबसे पहले लाहौर में 'आर्य गज़ट' के कार्यालय में ही रहे। फिर चंगड़ मुहल्ला पैसा अख़बार स्ट्रीट में रहने लगे। चंगड़ मुहल्ले में एक-दो मकान बदले, अंत में 1925 में रमता राम के ज़माने में परी महल, शाह आलमी दरवाज़ा के बड़े मकान में रहे। वहीं 8 फरवरी, 1926 को मेरा जन्म हुआ था। इसके बाद वे चंगड़ मुहल्ला साधु स्ट्रीट में आ बसे और अंत तक वहीं रहे।"

सौमित्र कुमार जी के इस कथन की पुष्टि इस रूप में होती है कि मई, 1920 में लाहौर से 'संत समागम' निकलना शुरू हुआ। फिर 10 दिसम्बर, 1925 से दाता दयाल ने चंगड़ मुहल्ले से साप्ताहिक अख़बार 'रमता राम' जारी किया। इसके बाद नवम्बर, 1926 से उन्होंने अमृतसर से उपनिषद् मैगजीन का प्रकाशन आरम्भ किया। अंत में लाहौर ही से उन्होंने 'मन मगन' जारी किया। इसके अलावा 'संत अमृतवाणी' का क्रम भी इसी लाहौर शहर से शुरू हुआ था।

सच यह है कि दाता दयाल 1918 ई. में कश्मीर चले गये थे। इसके बाद वे पंजाब, बलूचिस्तान, सिंध आदि के कई स्थानों पर गये और उन स्थानों से सम्बन्धित क़िस्सा कहानियों के अतिरिक्त अनेक यात्रा-वृत्तांत भी लिखे। इस क्रम म निम्नलिखित पुस्तकों के नाम उल्लेखनीय हैं :

आईना-ए-क़श्मीर, तोहफ़ा-ए-क़श्मीर दो भाग, सैर-ए-मुल्तान, सिंध देश के पुराने देहाती क़िस्से, मुल्तान के क़िस्से।

यात्रा

दाता दयाल ने देश के जिन भागों के दौरे किये थे, उनकी संपूर्ण सूची तैयार कर पाना अब व्यावहारिक रूप से असम्भव है। सिर्फ़ कुछ महत्त्वपूर्ण यात्राएँ इस प्रकार हैं।[98]

1925 में कराची, फिर वहाँ से जहाज़ द्वारा बम्बई गये। अप्रैल-जून 1933 में पंजाब, मुल्तान और सिंध की यात्रा की। 1934 में सुनाम, पटियाला, भटिंडा, कराची और फिर वापसी में अलीगढ़ आये। मार्च, 1937 में देहरादून फिर अक्टूबर में सहारनपुर गये। मई, 1937 में बलिया और फिर दिसम्बर में पानीपत गये।

शिक्षण-संस्थाएँ

दाता दयाल को अपने गाँव से बहुत प्रेम था। वहाँ धाम की स्थापना तो पहले ही हो चुकी थी। उस बस्ती की उन्नति के लिए उन्होंने दो संस्थाएं भी खोलीं। स्वयं लिखते हैं :

"मेरे पूर्वज ब्राह्मण-भक्त थे। यहाँ के ब्राह्मणों की सेवा के विचार से राधास्वामी संस्कृत पाठशाला और राधास्वामी एंग्लो संस्कृत हाई स्कूल खोलने का विचार हुआ। दोनों संस्थाएं बन गईं। हालांकि अभी आरम्भिक स्थिति में हैं। भविष्य में उच्चकोटि की संस्थाएं बन जाने की आशा बंधाती हैं।"[99]

धाम में प्रायः सतसंगी महानुभाव निवास करते थे। इन संस्थाओं में उन्हें काम दिलाना भी एक उद्देश्य था। ये संस्थाएँ 1926 में वसंत पंचमी के अवसर पर स्थापित की गई थीं। अब प्रगति करने के बाद ये संस्थाएँ राधा स्वामी संस्कृत पाठशाला और महर्षि शिवव्रत लाल इंटर कॉलेज के नाम से जानी जाती हैं।

मानद उपाधि

दाता दयाल का प्रयास यह रहा है कि बौद्ध, जैन और सिख आदि भारतीय धर्मों को हिंदू धर्म का अंग बनाया जाये। इस उद्देश्य से उन्होंने विभिन्न पुस्तकों की रचना की थी। 1927 ई. में 'जैन धर्म' के नाम से उन्होंने एक पुस्तक लिखी जो दिल्ली प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली से फ़रवरी, 1928 में छपकर प्रकाशित हुई। शुरू में 'गुज़ारिश' शीर्षक से भोलानाथ 'दरख़्शां' ने लिखा है कि :

"इस पुस्तक पर जैन मित्र मण्डल ने महर्षि जी की सेवा में मान-पत्र प्रस्तुत किया।"

इस पुस्तक की भूमिका चम्पतराय जैन ने लिखी है। उसमें है :

"बक़ौल लेखक यह पुस्तक जैनियों के लिए नहीं बल्कि ग़ैर जैनियों के लिए। लेखक हिंदू धर्म को बहुत प्राचीन मानते हैं। मैं जैन धर्म को इससे प्राचीन समझता हूँ।"

इस मान्यता के आधार पर चम्पत राय जैन ने पुस्तक में जानबूझ कर विरोधमूलक टिप्पणियाँ भी दी हैं। जो आश्चर्यजनक और ध्यान देने योग्य हैं। स्वयं लेखक ने 'माज़रत' (क्षमा) के तहत लिखा है :

"यह पुस्तक न पूर्ण है, न विश्वसनीय। मेरी दूसरी पुस्तक शायद बेहतर हो।"

जैन धर्म से सम्बन्धित दाता दयाल की कई रचनाएँ हैं। कुछ इस प्रकार हैं: जैन गाथांजली, जैन वृत्तांत कल्पद्रुम, ऋषि दत्तात्रेय और नायाब गौहर आदि।

व्यस्तताएँ

दाता दयाल की कार्य क्षमता असाधारण रूप से आश्चर्यजनक थी। लेकिन इससे ज़्यादा आश्चर्य की बात यह थी कि उन्हें अपनी अत्यधिक कार्य-व्यस्तता से कभी शिकायत भी नहीं हुई। उनके किसी श्रद्धालु ने कभी यह शिकायत नहीं की कि अमुक अवसर पर उन्होंने बात नहीं की या शीघ्रता के कारण उनकी ओर अपेक्षित ध्यान नहीं दे सके। उन्होंने स्वयं अपने कामों के बारे में लिखा है :

"एक मासिक पत्रिका के लिए कई आदमियों की भागीदारी और मेहनत की ज़रूरत होती है। मैं सब काम अकेला ही करता हूँ और किसी से किसी प्रकार के लेखन सम्बन्धी सहयोग की अपेक्षा नहीं रखता हूँ और न मुहताज ही हूँ। बीसियों आदमी रोज़ाना मुझसे मिलने आते हैं। रात के समय घंटों सतसंग कराता हूँ। मुझे दर्जनों पत्रों के उत्तर अपनी कलम से लिखने होते हैं। मैं यह सब करता हूँ और अपने आप में थकावट नहीं पाता और न विचलित होता हूँ। कारण यह है कि मेरा काम खेल-कूद का है।"[100]

नंदू भाई ने उनकी दिनचर्या के बारे में लिखा है :

"रात-दिन खुद मेहनत-मशक़्क़त में बराबर लगे रहते थे। खुद कमाते थे सैकड़ों को खिलाते थे। आपने गद्य और पद्य में तीन हज़ार से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। आपकी रचनाएँ लेखनी से सहज ही फूट पड़ती थीं। एक बार जो लिख दिया उसे दोबारा उलट-पलट कर नहीं देखते थे। कविता लिखते थे तो न कहीं लेखनी रुकती थी, न कोई शब्द कटता था और न ही कहीं सोच की गति धीमी होती थी।"[101]

इस असाधारण व्यस्तता के बावजूद दाता दयाल की कृतियाँ परिष्कृत और उच्चकोटि की हैं।

बारह

अलीगढ़ में

अलीगढ़ में दाता दयाल के जो श्रद्धालु थे उनसे मिलने के लिए उन्हें 1930 में यहाँ आना पड़ा। इसके बाद तो यह सिलसिला जारी रहा। मुंशीलाल गोयल का कथन है कि :

"जब हुजूर ने 1935 में हिंदी पत्रिका 'सुमेरु पर्वत' निकाली तो वहाँ डाकखाना खुलवाया गया जिसका नाम दयाल नगर रखा गया। एक बाग़ लगवाया जिसे दयालबाग़ नाम दिया गया। दयाल कुटी बनवाई, दयाल धाम का शिलान्यास किया। अलीगढ़ में जो जगह मुझे दिलाई गई उस अहाते का नाम दयाल कम्पाउंड रखा गया। ग़र्ज़ जो काम उन्होंने किये या हमसे कराये सब के सब दयाल ही के नाम से जाने जाते हैं।"[102]

दयाल कम्पाउंड से दाता दयाल की पुस्तकें बड़ी संख्या में प्रकाशित हुईं।

इलाहाबाद में

उसी वर्ष अर्थात् 1935 में दाता दयाल ने इलाहाबाद से 'धौलागिर' नाम से उर्दू पत्रिका निकालनी शुरू की। दीवान वंसधारी लाल 'अखग़र' इसके सहायक सम्पादक थे। इसकी नियमावली में यह लिखा हुआ है :

"मूल उद्देश्य हिंदू नौजवानों को हिंदू धर्म की महत्ता समझाना है और पुराणों की जो शिक्षाएँ प्रतीकात्मक भाषा में हैं उन्हें आम बोल-चाल की भाषा में अभिव्यक्ति देना है।"

'धौलागिर पर्वत' संत कार्यालय इलाहाबाद से प्रकाशित होती थी। इस शृंखला की सबसे महत्त्वपूर्ण है – 'तमाम दुनिया असल और नस्ल की नज़र से हिंदू है।' इस शीर्षक से भी अनुमान किया जा सकता है कि उनकी इच्छा यह थी कि संपूर्ण मानव जाति को हिंदूमत में दीक्षित कर दें।

दाता दयाल इलाहाबाद से बहुत पहले से जुड़े हुए थे। उपनिषद मैगज़ीन जो शुरू में अमृतसर से प्रकाशित होती थी, मार्च 1938 के बाद इसका दफ्तर इलाहाबाद आ गया था। मार्च के अंक में यह घोषणा की गई थी कि :

"उपनिषद मैगज़ीन का दफ़्तर अमृतसर से इलाहाबाद आ गया है। यहाँ

पर ही महर्षि जी की समस्त प्रकाशित पुस्तकों का भंडार एकत्र किया जा रहा है। भविष्य में महर्षि जी की सभी प्रकाशित कृतियाँ इलाहाबाद से प्राप्त हो सकेंगी।"

उपनिषद मैगज़ीन के बाद इलाहाबाद ही से 'संत' नामक पत्रिका दाता दयाल की मशहूर पत्रिका 'विज्ञानी' के बंद होने के बाद निकलना शुरू हुई। 'धौलागिर पर्वत' के सौजन्य से पहले भी 'संत' कार्यालय अपना कार्य कर रहा था।

प्राणांतक रोग

दाता दयाल ने बहुत अनुशासित और नियमित जीवन व्यतीत किया था लेकिन हर सुबह की शाम होना प्रकृति का एक अटल नियम है। इस शाश्वत नियम से किसी की मुक्ति नहीं है। मामचंद जी ने लिखा है :

"एक जनवरी 1939 से हुजूर ने सतसंग फ़रमाना बिल्कुल बंद कर दिया और प्रायः हर समय समाधि में रहते थे। कुछ बवासीर की तकलीफ़ भी मेहसूस करने लगे थे। शरीर की त्वचा धीरे-धीरे हड्डियों को छोड़ती जा रही थी। हुज़ूर बवासीर के लिए घी कवार का सेवन करना चाहते थे लेकिन सतसंगियों के आग्रह पर दवाई का सेवन करने लगे। मैं एक डॉक्टर बुला लाया। देखने के बाद उन्होंने कहा कि आपका उपचार मेरे बस का नहीं है। आप अपनी महिमा को स्वयं ही जानते हैं। हुजूर ने कहा मुझे धी कवार खाने को दो और वही बांधो। यही मेरा इलाज है।"[103]

प्रस्थान

ठाकुर नंदू सिंह ने **'विसाल'** शीर्षक से लिखा है :

"1938 में आपके अनुज ठाकुर सूरज नारायण सिंह का निधन हुआ। आप अपने भाई से बहुत प्रेम करते थे। क्योंकि जिस समय सूरज नारायण की माता मृत्यु शय्या पर थीं उन्होंने बच्चे को हुजूर दाता दयाल की गोद में रखकर प्राण त्यागे थे। भाई के बाद महर्षि जी का ध्यान शरीर से हट गया। भोजन के प्रति उदासीन रहने लगे। दिन-ब-दिन कमजोरी बढ़ने लगी। लेकिन बराबर तीन बार दिन में सतसंग करते रहे। सतसंग के समय कोई नहीं कह सकता था कि आप कमजोर हैं। चोला छोड़ने से एक-दो साल पहले आप खुल्लम-खुल्ला अध्यात्म के सूक्ष्म से सूक्ष्म रहस्यों को समझाने लगे थे। 23 फरवरी, 1939 को बुधवार साढ़े चार बजे राधास्वामी धाम पूरा कानून गोयान में आपने लेटने की इच्छा व्यक्त की। पौ फटने से पूर्व सफ़ेद चादर ओढ़कर लेटे और चोला छोड़ दिया।"[104]

23 फरवरी को दिन के दो बजे धर्मशाला से लगे हुए खेत में चिता तैयार कर दाह संस्कार किया गया। अंत्येष्टि के समय राजाराम सिंह (ली हंग चांग) और लक्ष्मण किशोर सिंह साहब भी आ गये थे।

समाधि

धाम ही में महर्षि जी की समाधि बनाई गई। बाद में उसके ऊपर एक सुंदर मंदिर का निर्माण करा दिया गया। धाम के बाहर समाधि के द्वार के ऊपर संगमरमर की पट्‌टी पर ये पंक्तियाँ खुदी हुई हैं :

"Here lies the holy ash of a perfect man, DATADAYAL who was the liberator of self from the clutches of body, mind and soul."

अपनी मौत

महर्षि जी ने अंतिम समय में मृत्यु के विषय पर कई कविताएं लिखी थीं। ज़्यादातर लम्बी हैं। एक नज़्म के कुछ शे'र निम्नांकित हैं :

अपनी मौत

हम अपनी ज़िदगी से रूठकर बेज़ार बैठे हैं,
न बिस्तर पर अजल के इस तरह बीमार बैठे हैं।

नहीं है ख़्वाब-ए-ग़फ़लत देख आँखें हैं खुली कैसी,
अजल ले गोद में मिलने को हम होशियार बैठें हैं।

न जन्नत की तमन्ना है न दोज़ख़ का कोई डर है,
मरें, हक़ की ज़ियारत हो पे-ए-दीदार बैठें हैं।

हंसी आती है हमको गिर्द अपने देख कर मज्मा,
तबीबो दूर भागो हम नहीं बीमार बैठे हैं।

इस अपनी जिंदगी में दोज़ख-ओ-जन्नत के मंज़र सब,
खुली आँखों से देखे, हम नहीं लाचार बैठे हैं।

निगाह-ए-हक़ में 'नय्यर' हो गये मादूम अब दोनों,
न रहमाँ है, न शैताँ वहम और पिंदार बैठे हैं।

मुनव्वर के क़ते

मुंशी बशेशर प्रसाद 'मुनव्वर' लखनवी दाता दयाल के विशिष्ट श्रद्धालुओं में से थे। उन्हें दाता दयाल की याद में सतरह क़ते और रूबाइयाँ कही हैं। कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं :

होने के लिए अहल-ए-क़लम होते हैं,
याक़ूत ख़त, अलमास रक़म होते हैं।

लेकिन शिवव्रत लाल वर्मन की तरह,
इंशा पर्दाज़ लोग कम होते हैं।

मालूम नहीं किसको फ़साना उनका,
देखा दुनिया ने है ज़माना उनका।

शायर, नासिर, अदीब उस पर दुरवेश,
लारैब[1] वजूद था यगाना उनका।

आरिफ़ देखे, फक़ीर देखे हमने,
नानक देखे, कबीर देखे हमने।

मुंशी शिवव्रत लाल वर्मन के तुफ़ैल,
लाखों रोशन ज़मीर देखे हमने।

ख़्वाब-ए-दुनिया खयाल-ए-उक़्बा[2] छोड़ा,
हम क्या कहें, जहाँ में क्या-क्या छोड़ा।

राधा स्वामी से मिलकर जावेद हुए,
जिस वक़्त महर्षि ने चोला छोड़ा।

अपने बारे में

दाता दयाल ने खुद अपने बारे में कहा था कि :

"मैं बज़ाते खुद न हिंदू हूँ, न मुसलमान हूँ। मैं खुद क्या हूँ, इसका पता तुम्हें मेरी रचनाओं से चलेगा। मैं मुसलमान लोगों के लिए मुसलमान बनकर उनको मुसलमानों के मुआफ़िक दुआ देता हूँ और हिंदुओं के लिए आचार-व्यवहार के अनुसार ईश्वर से प्रार्थना और आराधना करता हूँ। ताकि उन्हें आसानी के साथ मेरी दुआ और प्रार्थना का लाभ पहुँच सके। यदि मेरे विचारों में पवित्रता, शुद्धता और शक्ति है, तो इनका प्रभाव हुए बिना न रहेगा। मुसलमानों के लिए मैं सच्चा मुसलमान हूँ और हिंदुओं में सच्चा हिंदू हूँ।"[105]

और,

"मेरा जिस्म मर जायेगा। यह नाशवान है।[106] मेरे पीछे यह नज़र न आयेगा। मुझे इससे मोह और प्रेम भी नहीं है। मैं स्मृति शेष हूँ। संसार में मेरी समाधि रहेगी।

---

1. संदेह से परे 2. परलोक

वह लोगों को याद दिलायेगी कि शिव का जिस्म या जिस्म की खाक यहाँ दफ़न है। वह पवित्र भावनाओं को उभारने में मददगार होगी। मेरी किताबें और मेरे लेख इस भौतिक दुनिया में कुछ समय तक मेरा निशान बाकी रखेंगे। फिर क्या होगा। न मुझे कुछ कहने की और न तुम्हें कुछ जानने की ज़रूरत है –

मरने के बाद क़ब्र का मेरी कहाँ पता,
आरिफ़[3] के साफ़ सीने में मेरा मज़ार है।

---

3. सत्य का जिज्ञासु

तेरह

महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन ने बहुत बड़ी संख्या में पुस्तकों की रचना की थी। पुस्तकों और लेखों को वे स्वयं अपनी पत्रिकाओं में प्रकाशित करते थे। मुंशी गौरीशंकर लाल 'अख़्तर' भी उनकी रचनाओं को अपनी पत्रिकाओं में प्रकाशित करते रहते थे। 'ज़माना' कानपुर, 'आज़ाद' लाहौर, 'चाँद' इलाहाबाद, 'ओम' दिल्ली, 'सत्संग' गोरखपुर, 'आवाज़-ए-खल्क़' बनारस आदि में महर्षि जी के लेख और उनसे सम्बन्धित प्रतिक्रियाएं छपती रहती थीं। उनकी कृतियों के बारे में विभिन्न मत प्राप्त होते हैं[107] जिनका आधार श्रद्धा और अनुमान है। 'गुलिस्तान-ए-हज़ार' के अंत में ज़रूर उनकी कृतियों की सूची प्रकाशित की गई है। जिसमें कुल छः सौ छियानवे नाम हैं। यह सूची निश्चित रूप से अधूरी है। इन पंक्तियों के लेखक की जानकारी में ऐसी बहुत सी किताबें हैं जिनके नाम उपर्युक्त सूची में शामिल नहीं हैं।

यद्यपि महर्षि जी के निधन को भी अभी बहुत समय नहीं बीता है। उनके अनेक श्रद्धालु और प्रियजन भी अभी मौजूद हैं जिन्होंने उस ज़माने में उन्हें देखा था। इसके बावजूद महर्षि जी की कृतियाँ कम संख्या में उपलब्ध हैं। इसके अनेक क़ारण हैं। लेकिन उनके विस्तार में जाना यहाँ अनावश्यक लगता है।

नंदू भाई

ठाकुर नंदू सिंह (1894 से 1975 ई.) को महर्षि जी बेटे की तरह चाहते थे। संत संजोग, अवधूत, संत समागम और वेदांत मैगज़ीन के अध्ययन से अनुमान होता है कि महर्षि जी उनसे किस हद तक स्नेह रखते थे। 'नंदू भाई की साखी' शीर्षक से महर्षि जी के शब्दों का संग्रह मौजूद है जिसे सौहार्द और श्रद्धा का मूर्त रूप कहा जा सकता है। ठाकुर नंदू सिंह ने महर्षि जी की कृतियों को पुनः प्रकाशित करने के अतिरिक्त स्वयं भी कई पुस्तकों का लेखन-सम्पादन किया है। इनका उपनाम 'दयाल सरूप' है।

फ़क़ीरचंद

पंडित फ़क़ीर चंद (1886 से 1981 ई.) 'परमदयाल जी' के उपनाम से विख्यात हैं। इन्होंने अपना सारा जीवन महर्षि जी के आदेश का पालन करने में व्यतीत कर दिया। महर्षि जी को इन पर बहुत गर्व था। उनके आदेशानुसार पंडित फ़क़ीर

चंद मिस्र और इराक़ में रहे थे। महर्षि जी के आध्यात्मिक संदेश को लेकर वे केनेडा, अमरीका, इंगलैंड और जर्मनी आदि देशों में गये थे। महर्षि जी ने 'फ़कीर शब्दावली' नाम से अपने शब्दों का एक संग्रह भी तैयार किया था।

नैयर साहब

मोहन लाल जी, महर्षि जी के उन गिने-चुने श्रद्धालुओं में से हैं जिन्हें सही अर्थों में 'गुरुलीन' (फ़नाफ़िल मुर्शिद) का पद प्राप्त है। महर्षि जी ने उन्हें नैयर-ए-आज़म कहा है और इसी कारण 'नैयर' शब्द उनके नाम का अंग बन गया है। महर्षि जी ने उनके प्रति स्नेह के कारण अपनी नज़्मों, रुबाइयों आदि का संग्रह भी नैयर-ए-आज़म के नाम से सम्पादित किया।

नैयर साहब बड़े ही मिलनसार, विनम्र, सहृदय और दुनिया व दुनिया के राग-द्वेष से उदासीन व्यक्ति थे। महर्षि जी की शिक्षाओं को जनसाधारण तक पहुँचाने के उद्देश्य से उन्होंने 'गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग' शीर्षक से एक वृहद ग्रंथ भी बहुत पहले प्रकाशित किया था और अब महर्षि जी से सम्बन्धी नियमित शोध कार्यों की देख रेख भी कर रहे हैं।

दयालानंद

श्री आनंद राव उर्फ़ दयालानंद जी दक्षिण भारत में ठाकुर नंदू सिंह और महर्षि जी के उत्तराधिकारी थे। आप शालीनता और विनम्रता की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे और सिकंदराबाद में रहते थे। वहाँ के केंद्र का नाम 'इंसान बनो' (Be a man) रखा गया। नंदू भाई के बाद 'दयाल' प्रत्रिका का प्रकाशन जारी रखा। महर्षि जी की रचनाएं उर्दू में छपवाते रहते थे। विद्वान व्यक्ति थे। बातचीत के दौरान अक्सर फ़ारसी के शे'र पढ़ते थे। हनमकुंडा के केंद्र की भी इन्होंने शोभा बढ़ाई। पिछले साल इनका निधन हो गया है।

ली हंग चंग

इनका नाम राजा राम सिंह है। ये महर्षि जी के धेवते और मुंशी गौरीशंकर लाल अख़्तर के बड़े बेटे थे जिनके बारे में महर्षि जी ने लिखा है:

"लाला गौरीशंकर अख़्तर का एक लड़का है। तीन साल की उम्र, सूरत शक्ल चीनियों जैसी। मैंने इसका नाम ली हंग चंग रख दिया। यह लड़का मुझे बाबूजी कहता हैं मैं रोज़ इस बच्चे को देखने जाता हूँ। मगर खाली हाथ कभी नहीं जाता। हिंदू धर्म की शिक्षा है कि गुरु, राजा, साधु और समधी के घर खाली हाथ कभी नहीं जाना चाहिए।"

डॉ. राजा राम सिंह ने 1939 में इलाहाबाद से उर्दू पत्रिका 'दयाल' शुरू की लेकिन अगले ही वर्ष इसे नंदू भाई के हवाले कर दिया जो उसे सिकंदराबाद से निकालते रहे। डॉ. साहब ने महर्षि जी की कई पुस्तकें भी अपनी प्रशंसात्मक भूमिका के साथ प्रकाशित कीं। वे लंदन में रहकर यह प्रयास करते रहे कि यूरोप के विश्वविद्यालयों में महर्षि जी से सम्बन्धित शोधकार्य होते रहें।

दीपक

अख़्तर साहब के सुपुत्र और महर्षि जी के छोटे धेवते सौमित्रकुमार 'दीपक' उपनाम से कहानी-उपन्यास लिखते रहे हैं। अपने पिता जी के अन्तिम समय के शैक्षिक कार्यों में वे बड़ी निष्ठा के साथ सहयोग करते रहे हैं। उस दौर की अनेक फ़िल्मों में उन्होंने संवाद भी लिखे थे। अपने नाना के अनुयायियों में से हैं। विद्यानुराग की सीमा यह है कि महर्षि जी और अख़्तर साहब की अधिकांश कृतियों बल्कि आधी-अधूरी पाण्डुलिपियों को सीने से लगाये बैठे हैं। इन महानुभाव की क़ृतियाँ जितनी बड़ी संख्या सौमित्र कुमार के पास मौजूद है, किसी और जगह नहीं है। इनके मन में अपनी भाषा उर्दू, देश और देश की जनता के प्रति जो वेदना है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

पीर-ए-मुग़ां

पंडित बुआवत साहब एक वयोवृद्ध संगीतकार हैं। महर्षि जी की महफ़िलों में स्तुतिपरक नज़्में, शब्द और ग़ज़लें साज़ पर गाकर सतसंग की शोभा बढ़ा देते थे। 25 दिसम्बर, 1931 को राधा स्वामी धाम में भंडारा हुआ और :

"पंडित बुआदत्त साहब ने राग सुनाकर लोगों को खुश किया। नज़र-ए-इनायत हुई। उनको पीर-ए-मुग़ां और शाह-ए-क़लंदर के ख़िताब दिये गये। शब्द के प्रसाद भी दिये गये।"[108]

जनाब पीर-ए-मुग़ां दिल्ली में निवास करते हैं और श्रद्धालुजन उनके सत्संग से लाभान्वित होते रहते हैं।

मानव दयाल

मूल नाम ईश्वर चंद शर्मा है। आप श्री बलदेव कृष्ण शर्मा के सुपुत्र हैं। 15 मार्च, 1921 को मुल्तान में आपका जन्म हुआ। पंजाब विश्वविद्यालय से एम. ए. करके 1958 में जयपुर से पी-एच. डी. की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त की। वेदांत के मर्मज्ञ हैं। 1977 से 1981 तक क्लीवलैंड स्टेट यूनिवर्सिटी, ओहिओ (अमरीका) में दर्शन के अतिथि प्राध्यापक रहे। आप एक अधीति विद्वान और अनेक पुस्तकों

के लेखक हैं। 1959 से 1981 तक पंडित फ़क़ीर चंद साहब के साथ रहे और फिर उनके उत्तराधिकारी बनकर 'मानव दयाल' के नाम से विख्यात हुए। आप 'मानवता मंदिर' होशियारपुर को केंद्र बनाकर विश्व स्तर पर राधा स्वामी मत के प्रचार प्रसार में संलग्न हैं। इटली, फ्रांस, इंगलैंड और अमरीका आदि पाश्चात्य देशों की ओर झुकाव अधिक है।

शिवमंगल सिंह

ठाकुर नंदू सिंह साहब के बेटे और उत्तराधिकारी ठाकुर शिवमंगल सिंह निज़ामाबाद में वकालत करते हैं। आध्यात्मिक शिक्षा अपने पिता से प्राप्त की। दयालानंद जी की मृत्यु के बाद हाल ही में उनके उत्तराधिकारी हुए हैं और अब दक्षिण भारत में स्वामी जी की शिक्षाओं को प्रचारित करने में व्यस्त हैं।

चौदह

शैक्षिक सेवाएँ

श्री मोतीलाल 'मुख़्तार' ने महर्षि जी की शैक्षिक सेवाओं का परिचय देते हुए लिखा है :

"आपने अपनी रचनाओं के माध्यम से विशेष भाषा की बुनियाद डाली जिसमें हिंदी के सरल और रोज़मर्रा बोलचाल के शब्द बहुतायत में होते थे लेकिन लिपि बराबर उर्दू की ही रखते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि पंजाबी और दूसरे लोग जो हिंदी भली-भाँति नहीं समझते थे, उनके बीच हिंदी का प्रचार हो गया। यह वही भाषा थी जिसे आजकल के राजनीतिज्ञ 'हिंदुस्तानी' नाम देते हैं।"[109]

लेखन के क्षेत्र में महर्षि जी परिपक्व अवस्था और पूरी तैयारी के साथ उतरे थे। इसीलिए उनके यहाँ भारी आत्म विश्वास पाया जाता है। उनका कहना है कि ज्ञान को प्रयोगात्मक होना चाहिए।[110] अन्यथा मात्र सुनने, पढ़ लेने से लाभ नहीं हो सकता है। भाषा के बारे में उन्होंने बहुत स्पष्टता के साथ यह बात कही है कि, "ईश्वर ने मुझे जिस वर्ग में रखा है, उसकी सेवा लाज़िमी और ज़रूरी है।"[111]

महर्षि जी ने अपने ज्ञान और लेखन के माध्यम से बुनियादी रूप से हिंदू आस्था और विश्वासों से सम्बन्धित समूचा साहित्य संस्कृत में उपलब्ध था। इसलिए उर्दू भाषा में उन्हें कुछ कठिनाई मेहसूस हुई क्योंकि उर्दू में धार्मिक विषयों को साहित्य के दायरे से हमेशा बाहर रखा गया है। इसी कारण से उन्होंने उर्दू को विपन्न और दरिद्र कहा है।

महर्षि जी की रचनाओं को पढ़ने के बाद दो बातें सामने आती हैं। एक यह कि उनके भीतर बड़े से बड़े व्यक्ति के मत का खंडन करने का साहस है एक जगह लिखते हैं :

"स्वामी शंकराचार्य जैसे महाज्ञानी ने भी यही भूल की है। उपनिषदों के इतिहास में पहला व्यक्ति मैं हूँ जो इस प्राचीन मत का विरोध करता हूँ।"[112]

उन्होंने उपनिषदों की शिक्षा के सिलसिले में ब्राह्मणों के वर्चस्व का तर्क सम्मत रूप से खंडन किया है। बहस का निष्कर्ष यह है कि :

"क्षत्रिय[113] पहले धार्मिक व्यवसायी होने का दावा रखते थे जिसे ब्राह्मणों ने अपनी पैतृक सम्पत्ति समझ रखा था। क्षत्रियों का यह दावा उन्हें पसंद नहीं आया।

कोशिश यह थी कि दुनिया से क्षत्रियों का नामो निशान मिटा दिया जाये। क्षत्रिय पराजित हुए। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता स्वीकार कर ली गई। जैनियों के साथ ब्राह्मणों के झगड़े का कारण वही पुरानी प्रतिद्वंद्विता थी"। उपनिषदों में निहित विभिन्न परम्पराओं का भी महर्षि जी ने बड़े साहस के साथ खंडन किया। देखिए :

"कठोपनिषद संक्षिप्त किंतु सारगर्भित रचना है इसमें नचिकेता और यम नरक का देवता या प्रतिनिधि है ये सब बातें ऐसी हैं जिनका न कहीं सिर है न पैर है। आश्चर्य यह है कि यह कथा तैत्तरेय आरण्यक में भी आती है। कठोपनिषद् की ऐतिहासिक स्थिति के बारे में पूरे विश्वास के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता।"[114]

महर्षि जी की वेदों से सम्बन्धित रचनाएं भी ध्यान देने योग्य हैं। मिसाल के तौर पर लिखते हैं :

"एक वेद के बाद चार वेद हुए। इनको मानने वालों की आस्थाओं में भी एकरूपता नहीं थी। उनके बीच वेद-मंत्रो के आध्यात्मिक भाष्य में भी पर्याप्त अंतर है।"[115]

और :

"वैदिक धर्म खुद चोला बदलता हुआ और नये रूप रंग में निखरता हुआ चला आ रहा है। स्वरूप बदला हुआ है। आधार नहीं बदला। उपनिषद भी उसे आधार अवस्थित हैं। क्रियात्मक रूप में अंतर आया, मूल ज्ञान में नहीं।"[116]

इस आत्म विश्वास, उन्मुक्तता और सत्यवादिता के साथ-साथ महर्षि जी के स्वभाव में विनय-भाव भी है और सहमति का साहस भी और इस विशेषता ने सच्चाई पसंद करने वाले लोगों के बीच में महर्षि जी की कृतियों के मूल्य और महत्व को और अधिक बढ़ा दिया है। जैन धर्म से सम्बन्धित अपनी एक आरम्भिक पुस्तक में महर्षि जी ने स्वीकार किया है :

"जैन धर्म के सम्बन्ध में मेरा अध्ययन अधूरा है और सीमित है। सिर्फ चंद किताबें ही मैंने पढ़ी हैं। इसलिए सम्भव है कि मैंने इसको समझने में कहीं भूल की हो।"[117]

इसी प्रकार माण्डूक्योपनिषद् की भूमिका में यह लिखा है :

"श्री गौड़पद आचार्य जी ने इसका विस्तृत भाष्य लिखा है जो माण्डूक्य कारिका के नाम से विदित है। मैंने वह पुस्तक नहीं देखी है। अगर हाथ आ गई तो इस उपनिषद मैगज़ीन में इसका उल्लेख करूँगा।"[118]

अपनी त्रुटि और ज्ञान की सीमा को स्वीकार करना बड़े साहस की बात है। प्रायः लोग अपनी अज्ञानता के बावजूद ढिठाई अपनाते पाये जाते हैं और परिणाम स्वरूप विद्वानों के सामने लज्जित होते हैं।

महर्षि जी के समक्ष धर्मोपदेश और सुधार का उद्देश्य था। भाषा और शैली की समस्याओं पर ध्यान देने का उनके पास अवकाश नहीं था। वे अपनी बात कहते थे और पूरे बल और उत्साह के साथ कहते थे। एक जगह लिखते हैं :

"मैं किसी का अनुगामी नहीं हूँ न शंकराचार्य जी से मेरा सम्बन्ध है न रामानुजाचार्य से। मैं वेदांत को सच्चे वेदांती की दृष्टि से देखता हूँ। मतलब केवल आत्मा से है। मैं शब्द-जाल में न कभी पड़ा, न पड़ूँगा। यदि किसी महात्मा के वचनों से असहमति हो तो शब्दों से परे जाओ। वास्तविकता की ओर दृष्टि रखो। इतना ज़रूर याद रखो कि शब्दों में मृत्यु है। वास्तविक मनोकामना में जीवन है।[119]

महर्षि जी लेखन-सम्पादन का काम जिस तेजी से करते थे, उसकी मिसाल मिलना आसान नहीं। मालूम होता है कि गूढ़ और दार्शनिक विषयों पर वे स्वयं लिखते थे। उनकी लेखनी के प्रवाह का अनुमान निम्नलिखित उद्धरण से हो सकता है :

"एक महीने के भीतर मैंने तीन पुस्तकें लिखीं जिनमें यह वाजसनेयी संहिता सबसे छोटी है। इसे करीमनगर में शुरू किया था। आज तीसरा दिन है कि मैं जकत्याल आया और तीसरे दिन की दोपहर में यह समाप्त हो गई।"[120]

लाइट लिटरेचर में वे कहानी और उपन्यास को भी शामिल करते हैं। अमरीका से वापसी के बाद जब परिस्थितियाँ अनुकूल हुईं उस समय मालूम होता है कि वे अपने उपन्यास और कहानियों को श्रुतलेख से लिखा दिया करते थे। उपन्यासों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि :

"शुक्र है कि उर्दू ज़बान में अब अख़्तर साहब को बंगला उपन्यासों के अनुवाद का विचार आया है। मैं भी अपनी फ़ुर्सत और क़ाबिलियत के हिसाब ज्यों-त्यों उनका हाथ बंटाने लगा हूँ।"[121]

उपन्यास लेखन अख़्तर साहब के आग्रह पर आरम्भ किया था, इसलिए महर्षि जी ने अपने अधिकांश उपन्यास उन्हें ही लिखवाये थे। महर्षि जी के बारे में यह बात निर्विवाद है कि अंतिम समय में उन्हें अपनी रचनाओं पर पुनर्दृष्टि करने का अवकाश नहीं मिला था। अख़्तर साहब उनके विश्वासपात्र और दायें हाथ थे। मालूम होता है कि रचनाओं पर दूसरी नज़र डालने का दायित्व उन्होंने अपने ऊपर ले लिया था।

"शोलाखेज़ ममूका" पुस्तक के मुखपृष्ठ पर लेखक के नाम के नीचे 'मुरत्तिबः, मुअल्लिफः, मुसह्हा गौरी शंकर लाल 'अख़्तर' भी लिखा हुआ है। इसी प्रकार 'शाही लकड़हारा' के बारे में लेखक का कहना है कि यह क़िस्सा मैंने करम चंद

जी को लिखवा दिया था। लेकिन इसके विज्ञापन में कहा गया है कि :

"शाही लकड़हारा नामी मशहूरो-मारूफ़ नावेल का तर्जुमा एडीडर शिवशंभू (अख़्तर साहब) ने निहायत ही सेहत और सफ़ाई के साथ सरल भाषा में किया है।"[120]

इससे अनुमान होता है कि छपे हुए उपन्यास की भाषा-शैली में भी अख़्तर साहब की लेखनी का हस्तक्षेप रहा है। महर्षि जी की कथा-रचनाओं का अध्ययन करते समय इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए।

पंद्रह

महर्षि जी लेखन-सम्पादन के क्षेत्र में एक विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उर्दू शायरी की तमाम नई-पुरानी विधाओं और सभी प्रचलित रूपों में उनकी रचनाएं उपलब्ध हैं। ज़्यादा बड़ी बात यह है कि अपनी संख्या और आकार की दृष्टि से भी उनकी रचनाएं बहुत अधिक हैं।

पत्रकारिता

महर्षि जी ने लेखन का आरम्भ एक अखबार के सम्पादन से किया था। उनके सम्पादन कार्य के महत्व का अंदाजा और अनुभव अच्छी तरह हो गया था। उन्होंने अपने जीवन-काल में मासिक और साप्ताहिक मिलाकर लगभग डेढ़ दर्जन अख़बार निकाले थे। एक दो को छोड़कर सभी पत्र-पत्रिकाओं पर स्वामित्व था। इस कारण पूरी स्वतंत्रता और निर्भीकता के साथ इनमें अपने लेख, भाषण और किताबें छापकर अपनी विचारधारा को बड़े पाठक समुदाय तक पहुँचाते थे। उनका दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट और सुनिश्चित था। इसी के अनुरूप वे अपनी कृतियों में शब्दों का चयन करते थे। सोच के अनुरूप ही उनकी भाषा-शैली ढल गई थी। उनकी भाषा और भंगिमा को उनके प्रभाव में निकलने वाले अख़बारों के सम्पादकों ने अपना लिया था। उनके विचारों से असहमति होते हुए भी उनकी पत्रकारिता अपने-आप में विशिष्ट प्रभावशाली और निर्णयात्मक है, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता।

नारी-शिक्षा

महर्षि जी अपने लेखन का आरम्भ देश की स्त्रियों के जीवन-वृत्तांत से की थी। इस विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है :

"इनके लिखने के पीछे मेरा मूल उद्देश्य यह है कि हिंदुओं में राष्ट्रीय भावनाएं जाग्रत हों।"[123]

आरम्भिक दौर में उन्होंने हिंदू स्त्रियों के जीवन पर कई पुस्तक-मालाएँ लिख डालीं। उनमें से निम्नलिखित विशेष रूप से प्रसिद्ध हुईं :

1. भारत की शुजा आलम स्त्रियों के कारनामे
2. राजपूतानियों के कारनामे

कुछ दिनों बाद उनकी लेखनी अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी विषयों की ओर मुड़ गई।

बाल साहित्य

जिस ज़माने में महर्षि जी ने पूरा क़ानून गोयान में स्कूल खोले। उन्हें बच्चों के लिए उपयोगी पुस्तकें तैयार करने का ध्यान आया। इस उद्देश्य से उन्होंने जो पुस्तकें लिखी थीं उनमें से एक 'बच्चों का दिल बहलाओ' है। इसकी भूमिका में लिखा है :

"जैसी उम्र, वैसा क़िस्सा हो तब और भी मज़ा आता है। सबसे मजेदार बच्चों की कहानियाँ होती हैं। ये हर उम्र वालों को मज़ा दे जाती हैं। अगर ऐसी कहानियाँ लिखी गईं तो बच्चे खेल-खेल में पढ़-लिख जायेंगे।"

इस पुस्तक की भूमिका 30 अप्रैल, 1926 में लिखी गई थी। इसमें आठ कहानियाँ हैं। इसे जे. एस. संत सिंह एण्ड संस ने लाहौर से प्रकाशित किया। इसमें छियानवे पृष्ठ हैं।

प्रौढ़ों के लिए

अपने जीवन के अंतिम दौर में महर्षि जी का ध्यान कम पढ़े लिखे या धार्मिक विषयों से अपरिचित लोगों की शिक्षा की ओर गया। इस उद्देश्य से 'वेदांत' की शिक्षा के लिए एक लेखमाला शुरू की। 'वेदांत' की पहली किताब की भूमिका में लिखा है :

"यह पुस्तक विषय से अनभिज्ञ नये लोगों के लिए लिखी गई है। वेदांत के इस क, ख, ग को पढ़ो।"

इस पुस्तक के अंत में 'वेदांत' शीर्षक से एक कविता भी दी गई है और इसके बाद पृष्ठ 188 से 192 तक वेदांत से सम्बन्धित शब्दार्थ दिये गये हैं। इससे पुस्तक बहुत उपयोगी बन गई है। इस पुस्तक का मुद्रण गिरधर स्टीम प्रेस, लाहौर से हुआ था।

कुछ समय बाद 'रूहानी प्राइमर' शीर्षक से एक और उपक्रम शुरू हुआ। इसकी भूमिका में लिखा है :

"यह पुस्तक सिर्फ़ आरम्भिक ज्ञान प्राप्त करने वालों के लिए है और आध्यात्मिक पाठ्यक्रम के क्रम यह प्राथमिक पुस्तक है।"

यह छियानवे पृष्ठ की पुस्तक अमृत इलैक्ट्रिक प्रेस, लाहौर से 11 मई, 1933 को छपी थी। इस प्राथमिक पुस्तक का शीर्षक 'राधा स्वामी मत संदेश' है।

इसी प्रकार की एक पुस्तक 'हिंदू मत मवाद' भी है जो 'धौला गिर पर्वत' की शृंखला में 1953 में छपी थी। इसके बारे में कहा गया है कि :

"इस पुस्तक का उद्देश्य सिर्फ़ इतना है कि मनोरंजन ही मनोरंजन में जन-साधारण रामायण और महाभारत की कथाओं से परिचित हो सकें। यह मामूली लतीफ़ों से भी ज़्यादा उपयोगी सिद्ध होगी।"

वृत्तांत

फ़ारसी में लम्बे समय से सूफ़ियों के वृत्तांत लिखे जा रहे थे। लेकिन उर्दू शायरी ने इस तरह वर्चस्व स्थापित कर लिया था कि आमतौर पर वृत्तांत का आशय शायरों का वृत्तांत ही लिया जाने लगा था। महर्षि जी ने सूफ़ी संतों के अलावा भारत के वीरों के वृत्तांत भी लिखे और इस प्रकार उर्दू में वृत्तांत (तज़्किरा) को विषय-वस्तु की दृष्टि से व्यापकता प्रदान की। इस क्रम में उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'नया भगतमाल' है। महर्षि जी इस पुस्तक को कई खंडों में पूरी करना चाहते थे।

'भक्तमाल' नाभा जी की काव्य रचना है। महावीर सिंह गहलौत का कहना है कि इसकी रचना 1068 हिज़री तदनुसार 1658 ई. में हुई लेकिन कई विद्वान इसे 1000 हिज़री तदनुसार 1592 ई. की रचना मानते हैं।[124] तब से अब तक इस पुस्तक के अनेक अनुवाद हो चुके हैं।[125] महर्षि जी ने भी यह कार्य किया। 'नया भगतमाल' भाग एक की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि :

"यह मुंशी तुलाराम साहब की तरतीब के अनुसार है। योजना है कि पहले खंड में नाभा जी के दृष्टिकोण से सभी प्राचीन भक्तों का जीवनवृत्त लिखा जाये। दूसरे और तीसरे खंड में नाभा जी के परवर्ती भक्तों के जीवन-वृत्त लिखे जायें। उन भक्तों के विषय में भी लिखा जाये जो नाभा जी की पुस्तक में छूट गये हैं। भक्ति के तीन भेद हैं कर्म भक्ति, उपासना भक्ति और ज्ञान भक्ति। इस खंड में उन भक्तों के सम्बन्ध में लिखा गया है जिन्होंने धर्म-कर्म से अपने जीवन को सार्थकता प्रदान की है।"

यह पुस्तक 19 दिसम्बर, 1921 को पूरी हुई। इसकी पृष्ठ संख्या छह सौ अठारह है। समापन की पंक्ति है :

"पहला खंड जिसे परम सनाध नाभा जी ने पुरानी भाषा में लिखा था अब नई प्रचलित भाषा में व्यवस्था पाकर समाप्त हुआ।"

इसका दूसरा खंड 'संत माल' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। भूमिका में है :

"'भक्त माल' पहला खंड नाभा जी की रचना है। और हर दृष्टि से यह

एक अद्वितीय पुस्तक है। पुरानी भाषा शैली में लिखी इस पुस्तक को हमने आम बोल चाल की सरल उर्दू भाषा में ढालने का प्रयास किया ताकि हर शिक्षित और अल्प शिक्षित इससे लाभ उठा सके। नाभा जी ने अपने ढंग से अनेक भक्तों के जीवन-चरित एकत्र कर दिये थे क्योंकि मनुष्य के द्वारा किया गया कोई भी कार्य सम्पूर्ण और दोष रहित नहीं हुआ करता। इसलिए स्वयं नाभा जी के समकालीन और उनके बहुत से पूर्ववर्ती भक्तों को 'भक्तमाल' में स्थान नहीं मिल पाया। यह प्राचीन कृति हमारे 'भगत माल' की पहली जिल्द है। बाक़ी और जिल्दें हम खुद तरतीब दे रहे हैं। इस नये 'भगतमाल' में हमारी कोशिश यह रहेगी कि जहाँ तक सम्भव हो सके हम उनके पवित्र चरित्र को आज की पीढ़ी के इच्छुक पाठक वर्ग तक पहुँचा सकें। हम जो कुछ लिखेंगे बिना किसी भेद भाव और पक्षपात के लिखेंगे।"

यह पुस्तक 307 पृष्ठों में पूरी हुई। इसके बाद सात पृष्ठों में तीन परिशिष्ट हैं। पुस्तक अप्रैल, 1923 में लाहौर से छपकर राधा स्वामी धाम, गोपीगंज से प्रकाशित हुई।

वृत्तांत की श्रेणी में आने वाली महर्षि जी की पुस्तकों में 'वीर मंडल' भी उल्लेखनीय है। यह पुस्तक छः संक्षिप्त भागों में प्रकाशित हुई है और इसकी भूमिका में कहा गया है कि :

"इन पृष्ठों में भारत की पवित्र भूमि के प्रसिद्ध महापुरुषों का संक्षिप्त वृत्तांत है।"

विभिन्न रामायण

भारत की साहित्यिक परम्परा में 'रामायण' का अद्वितीय स्थान है। देश में शायद ही कोई भाषा हो जिसमें यह कथा न लिखी गई हो। उर्दू भी इससे वंचित नहीं है। देश के विभिन्न क्षेत्रों और विश्वासों से जुड़े लोगों की अलग-अलग रामायणें हैं और अधिकांश ने इसे अपने धर्म का अंग भी बना लिया है। आर्य समाज इस प्रकार के विश्वासों के विरुद्ध है। लेकिन महर्षि शिवव्रत लाल इस संगठन से जुड़े रहने के बावजूद देश के प्राचीन विश्वासों और परम्पराओं की सुरक्षा और सम्मान को ज़रूरी समझते थे। बताया गया है कि :

"महर्षि जी ने एक दर्जन से ज़्यादा रामायणें लिखी हैं।"[126]

राम-कथा को मात्र क़िस्सा-कहानी के रूप में न लिखते हुए उन्होंने अपने 'आर्य ग़ज़ट' के सम्पादन काल में अपनी रामायण लिखी थी जिसे भारत लिटरेचर कम्पनी लिमिटेड ने 659 पृष्ठों में छपवा कर प्रकाशित किया था।

लगभग उसी ज़माने में महर्षि जी ने दो भागों में 'रामायण वाल्मीकि' की रचना की थी इसे भी उपर्युक्त संस्था ने ही प्रकाशित किया था। यह 1034 छंदों की रचना है।

जनवरी, 1911 में रामायणों की इस शृंखला में 'रामायण कल्पद्रुम' की रचना आरम्भ हुई। इसकी भूमिका में लिखा है कि :

"यह गोस्वामी तुलसीदास की परम पावन रामायण का सरल और सार्थक अनुवाद है। गुसाईं जी की रामायण को संसार जानता है कि इसमें श्रेष्ठतम जीवन-मूल्यों को अभिव्यक्ति दी गई है और संसार के सभी रचनाकारों की तुलना में इसकी वाणी जन-मानस में गहरे समाई हुई है।

उसी ज़माने में महर्षि जी विदेश यात्रा पर चले गये थे। इसलिए यह कहा नहीं जा सकता कि यह कार्य पूरा हुआ या नहीं।

मुंशी सूरज नारायण के आग्रह पर 'विज्ञान' के क्रम में 'श्री विज्ञान रामायण' लिखी जिसे भारत लिटरेचर कम्पनी ने 1918 ई. में प्रकाशित किया। इसके बारे में कहा गया है कि :

"विज्ञान की दृष्टि से श्री रामचंद्र जी का यह जीवन चरित्र गोस्वामी तुलसीदास जी की रामायण के आधार पर लिखा गया है।"

रचनाकार ने स्वीकार किया है कि उस समय तक उसने तुलसीकृत रामायण के अतिरिक्त अन्य किसी रामायण का अध्ययन नहीं किया था। इसके बावजूद गौरीशंकर लाल 'अख़्तर' ने कहा है कि :

"ऐसी पुस्तक संस्कृत भाषा में भी न निकलेगी।"

यह 522 पृष्ठों की रचना है।

इसके बाद अगस्त, 1919 ई. में उन्होंने तुलसीकृत रामायण का मूल दोहा और चौपाइयों सहित सरल और सुगम उर्दू गद्य में अनुवाद किया। इसका नाम 'तुलसीदासकृत सटीक सचित्र रामायण' रखा। यह उर्दू गद्य में भाष्य है। इसकी भूमिका में लिखा है :

"मैंने वाल्मीकि रामायण स्वयं पढ़ी है। दो खंडों में इसका अनुवाद भी किया है। लेकिन तुलसीकृत रामायण को बार-बार पढ़ता हूँ। उसके और इसके बीच ज़मीन-आसमान का अंतर है। तुलसीदास ने रामायण लिखकर हिंदू जाति पर बड़ा उपकार किया है। यह उनके हृदय से फूटी हुई रचना है।"

यह पुस्तक भी लाहौर से प्रकाशित हुई है। इसकी पृष्ठ संख्या 1321 है।

महर्षि जी का साप्ताहिक अख़बार 'रमता राम' नवम्बर 1925 में जारी हुआ। उन्होंने इसके लिए 'रूहानी रामायण' लिखी। उसकी भूमिका से पता चलता है

कि इससे पूर्व महर्षि जी निम्नलिखित रामायणों की रचना कर चुके थे :

वेदांत रामायण, अध्यात्म रामायण, ज्ञान रामायण, विज्ञान रामायण, घट रामायण।

उसी में इस बात का उल्लेख भी है कि :

"उत्तम रामायण जैनियों की अपनी अलग रामायण है। बौद्धों की रामायण मेरी नज़र से नहीं गुज़री है। 'रमता राम' से 'रमता राम रामायण' या दशहरा अंक की फ़र्मायश हुई। मिस्टर चंपतराय जैन बैरिस्टर एट लॉ हरदोई ने अपनी अंग्रेज़ी 'उत्तम रामायण' भेजी है, जो स्वामी शंकरानंद जी की रचना है। मूल पुस्तक मुझे नहीं मिल सकी, मैंने उसी का सहारा लिया है। 'रूहानी रामायण' नाम रखा है।"

अपने जीवन के अंतिम समय में महर्षि जी ने 'महा रामायण' का संपादन किया। इसके प्राक्कथन में बताया है कि :

"इसमें विभिन्न रामायणों तथा उनसे संबंधित विशेषताओं का परिचय कराया गया है। मैंने उर्दू में दस-बारह रामायण लिखी हैं।"

यह पुस्तक 'सत्संग' पत्रिका में अप्रैल 1938 ई. से जुलाई 1939 ई. तक 1010 पृष्ठों में प्रकाशित हुई है।

कबीर

रामायण की भाँति महर्षि जी का प्रिय विषय कबीर भी है। वे कबीर को आदि संत मानते थे और अपने विचारों की परम्परा को उनसे जोड़ते थे लेकिन श्रद्धालुओं का कहना है कि :

"परम संत महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज साक्षात परम ब्रह्म और सत्य के अवतार थे। आदि संत कबीर साहब और महर्षि जी महाराज में हर दृष्टि से कोई भेद या अंतर नहीं है। वही वे थे और वे वही थे।"[127] और यह दावा स्वयं महर्षि जी की कृतियों पर आधारित है। इस सूरते हाल का नतीजा यह है कि महर्षि जी की अधिकांश रचनायें इसी विषय से सम्बंधित हैं।

कबीर से सम्बंधित महर्षि जी की कदाचित् सबसे पहली लेकिन सबसे बड़ी कृति "कबीर जोग" है जिसे उन्होंने दिसम्बर 1910 ई में पूरा किया था। इसके तेरह भाग हैं, जिन्हें दो खंडो में विभाजित किया गया है। कुल पृष्ट 919 हैं। भूमिका में लिखा है :

"कबीर जोग अपनी विषय-वस्तु और आकार की दृष्टि से पहली बड़ी पुस्तक है। जब तक कोई इसे पढ़ न लेगा, सम्भव नहीं कि राधा स्वामी पंथ, नानक पंथ,

दादू पंथ और किसी पंथ के आदर्शों से परिचित हो सके। कबीर साहब आदि संत थे। उनकी शिक्षाओं पर पंथ की बुनियाद है। हम बिना किसी धार्मिक पक्षपात के उनकी शिक्षाएं प्रस्तुत कर रहे हैं।"

अमरीका से वापसी के बाद महर्षि जी ने 1914 ई. में ग्यारह भागों में 'परम संत कबीर साहब के बीजक' की उर्दू गद्य में व्याख्या तैयार की। बीजक का यह भाष्य 628 पृष्ठों में प्रकाशित हुआ। भाष्यकार का कहना है :

"कबीर साहब का बीजक संत मत का पहला ग्रंथ है। कबीर साहब आदि संत कहलाते हैं। उनसे पहले इतने विस्तार के साथ संत मत का प्रचार नहीं हुआ था और जितने महात्मा उनके बाद हुए उनकी शिक्षाओं में बहुत कुछ वही बातें हैं, जो कबीर साहब सुना गये हैं। इस बीजक की रचना किसी महान शक्ति की प्रेरणा से हुई थी और इस दृष्टि से इसे बहुत उपयोगी होना चाहिए। एक रात को स्वप्न में कबीर साहब के दर्शन हुए। आपने मुस्करा कर एक शब्द की व्याख्या की जिसको हमने ज्यों का त्यों लिख दिया।"

पंडित अयोध्या सिंह उपाध्याय की पुस्तक 'कबीर वचनावली' में कबीर के बारे में कुछ अनुचित बातें आ गई थीं। महर्षि जी ने उसके खंडन के उद्देश्य से 'कबीर और कबीर पंथ' शीर्षक से एक पुस्तक नवम्बर 1923 ई. इलाहाबाद से प्रकाशित कराई। इसमें कहा गया है :

"मैं कबीर पंथी नहीं हूँ। न मुझमें धार्मिक पक्षपात और हठधर्मी है। मैंने अनेक भाषाओं की पुस्तकें पढ़ी हैं। इस महात्मा की वाणी मुझे सर्वोत्तम लगती है।"

इस पुस्तक में महर्षि जी ने कबीर की रचनाओं की सूची दी है। सूची में अठहत्तर पुस्तकें हैं।

'कबीर दर्शन' के बाद मई 1926 में 'कबीर गूढ़ शब्द व्याख्या' का पहला भाग प्रकाशित हुआ। इनमें कबीर के उन शब्दों की व्याख्या है जो क्लिष्ट और गूढ़ समझे जाते हैं। एक सौ इकतालीस पृष्ठों की यह पुस्तक मौज़ा खीसा कलाँ के कुछ दिनों के सत्संग के दौरान लिखी गई थी। उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त महर्षि जी ने कबीर विषयक लगभग एक दर्जन से अधिक कृतियों की रचना की है।

जीवनियाँ

महर्षि जी ने विभिन्न धर्मों के महान पुरुषों की जीवनियाँ भी लिखी हैं। उनकी इस प्रकार की रचनाओं की सूची लम्बी है। कुछ पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं :

सवानह उम्री हज़रत मुहम्मद साहब

सवानह उम्री हज़रत अली साहब

शम्स तबरेज़

सवानह उम्री गुरु नानक देव

सवानह उम्री गोस्वामी तुलसीदास

महात्मा ग़रीब दास

श्रीकृष्ण

शिवाजी मरहठा

सवानह उम्री बुज़ुर्ग वली राम जी

स्वामी दयानंद सरस्वती

पंडित मदन मोहन मालवीय

अनुवाद

हालाँकि महर्षि जी का कहना है कि "मैं अनुवाद के काम से कोसों दूर भागता हूँ। अपनी चीज़ अपनी है। माँग-ताँग की आख़िर माँग-ताँग की ही होती है।" लेकिन सच्चाई यह है कि उनकी प्रतिभा ने हर क्षेत्र में अपना कौशल दिखाया है और उनकी लेखनी के प्रवाह में कहीं भी गतिरोध नहीं दिखाई देता। उन्होंने संस्कृत से भी अनुवाद किये हैं और अंग्रेज़ी से भी। भारत की आधुनिक और जीवित भाषाओं में से बंगाली, गुजराती आदि से भी उन्होंने अनुवाद किये हैं। अंग्रेज़ी से अनूदित उनकी कुछ पुस्तकें इस प्रकार हैं :

	अंग्रेज़ी पुस्तक	अनुवाद	विशेष
1.	ए. विक्टर सिग्नो की पुस्तक	इल्म-ए-ख़याल	सिर्फ़ चार दिन में अनुवाद किया, पृष्ठ संख्या 160
2.	सराब-ए-हयात	विवेक कल्पद्रुम या शजर-ए-मुराद	आज़ाद की आबे-हयात के अंश भी उद्धृत हैं।
3.	पं. ब्रह्मशंकर की पुस्तक		पंडित जी की पुस्तक के ढंग पर इसमें संत मत या राधा स्वामी पंथ के दर्शन, कर्म, रुचियों और योग का वर्णन है।
4.	ले. कर्नल टाड जेम्स की पुस्तक	राजस्थान का इत्र	लाहौर, 1919
5.	कनकेड की टेल्स ऑफ सिंध	सिंध देश के पुराने क़िस्से	पहले क़िस्से में अलिफ़नामा की तर्ज पर शे'र भी शामिल हैं।

6. डॉ. पाल डेवसन का पैम्फ़लेट	शंकर मत	वेदांत का परिचय और प्रयोगात्मक वेदांत,
7. प्रोफ़ेसर मैक्समूलर का मज़्मून जो जर्नल ऑफ महाबोध सोसायटी सीलोन में छपा था।	सवानह उम्री राय सालगराम	पुस्तक का दूसरा भाग स्वयं राय साहब की पुस्तक 'सार उपदेश' से लिया गया है।
8. स्वामी सत्यानंद की दयानंद प्रकाश	श्री स्वामी दयानंद सरस्वती जी महाराज	धूमिल और उज्जवल दोनों पहलू हैं।
9. स्वामी विवेकानंद के लेक्चर	भक्तियोग	
10. मैकालीफ़ की सिख रिलीजन	नानक जोग	कुल 299 पृष्ठ
11. कौंट टालस्टाय का क़िस्सा	सुख विचार	कुछ और लेख अपनी ओर से भी लिखे हैं।
12. लारेंस की कश्मीर वादी और पं. आनंद कौल की पुस्तक	आईना-ए-कश्मीर	इसमें खुद अपनी मालूमात और सफ़र के हालात भी शामिल हैं।
13. अंगार का बीज, धर्मपाल, सम्पादक महाबोधि सोसायटी कलकत्ता का लेख	बुद्ध धर्म का इल्मे-अख़्लाक़	कुल इक्तीस पृष्ठ
14. स्वामी विवेकानंद की पुस्तक	कर्मयोग	146 पृष्ठों की यह पुस्तक आठ अध्यायों में है।

इनमें से कोई भी पुस्तक शब्दानुवाद नहीं है। अनुवादक ने मूल पुस्तक की अंतर्वस्तु को अपने दृष्टिकोण से उर्दू में लिपिबद्ध किया है।

महर्षि जी ने अपनी अनेक पुस्तकों में यूरोप के लेखकों की रचनाओं का उपयोग किया है। उन्होंने अपनी कई पुस्तकों की रचना में इन लेखकों की कृतियों के योगदान को स्वीकार किया है। उदाहरण के लिए :

1. 'उपनिषदों का फ़लसफ़ा' अर्थात् 'उपनिषद भाष्य भूमिका' के प्राक्कथन में स्वीकार किया है। :

"डॉ. डेवसन की 'फ़िलासफ़ी ऑफ उपनिषद' का मैंने पूर्ण अनुसरण किया है। इसका मूल स्रोत यही पुस्तक है। डेवसन साहब से बेहतर तरतीब मेरी समझ में नहीं आती।"

इस पुस्तक की रचना में दाराशिकोह की कृति 'सिर्रे-अकबर' और मैक्समूलर की कृति से भी लाभ उठाया गया है।

2. 'क़दीम आर्यों में इल्म-ए-तहरीर का रिवाज' में कहा गया है :

"इस पैम्फ़लेट का बेशतर हिस्सा आरगूस साहब की 'तवारीख़-ए-हिंद' से लिया गया है। इसमें मैक्समूलर और यूरोप के अन्य बहुत से लेखकों की रचनाओं के हवाले भी दिये गये हैं।"

3. 'राजा रसालू' की भूमिका में बताया गया है कि :

"इसमें इल्फिस्टन साहब की 'तवारीख़-ए-हिंद' और ब्रिग साहब की तवारीख़ के हवाले भी हैं। सबसे पहले इसका अनुवाद जनरल ऐबट साहब ने किया जो 'जर्नल ऑफ़ ऐशियाटिक सोसायटी' बंगाल में प्रकाशित हुआ था। फिर कप्तान आर सी टैम्पल ने भी कुछ नोट्स लिखे थे, जो अब उपलब्ध नहीं। अंग्रेज़ी में इसका पूरा अनुवाद पादरी चार्ल्स स्वेज़टन साहब ने किया है। उन्होंने पंजाबी गीत को शब्दशः शुद्ध लिखा है और नीचे उसका काव्यानुवाद दे दिया है। मैं शायद पहली बार इसको उर्दू का जामा पहनाकर पब्लिक में भेजता हूँ।"

जो भी हो, यह सच्चाई है कि महर्षि जी ने अपने विशेष दृष्टिकोण से ही सही, अंग्रेज़ी साहित्य के अनुवाद से उर्दू को सम्पन्न बनाने की दिशा में अथक प्रयास किये हैं।

संस्कृत साहित्य और हिंदू धर्म एक दूसरे के पर्याय हैं। संस्कृत से लाभ उठाये बिना हिंदू धर्म से सम्बन्धित कोई शैक्षिक कार्य नहीं किया जा सकता। महर्षि शिवव्रत लाल ने अपने वैचारिक दृष्टिकोण को व्यापक जनसमूह के बीच प्रचारित करने के उद्देश्य से संस्कृत की महत्त्वपूर्ण रचनाओं को उर्दू में रूपांतरित कर दिया। 'उपनिषद् मैगज़ीन' इस संदर्भ मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जिसके हर अंक में कम से कम एक या दो उपनिषदों के कथा संवादों को मूल एवं उर्दू भाष्य सहित प्रकाशित किया जाता था। महर्षि जी की रामायणों की चर्चा की जा चुकी है। उन्होंने कुछ पुराणों और वेदों के अनुवाद भी किये हैं। इसके अलावा महाभारत और गीता से सम्बन्धित अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं। कुछ में हैं :

1. **श्रीमद्भगवद गीता** – यह शब्दानुवाद है लेकिन आम बोलचाल की सरल

भाषा में। 'मेरी भूमिका गीता के अध्ययन में लोगों की रुचि उत्पन्न करेगी और टीका के उद्देश्य को समझने में भी सहायक होगी।' यह पुस्तक भी दो भागों में है। पहला भाग अक्टूबर, 1934 में और नवम्बर, 1937 में पूरा हुआ। कुल 434 पृष्ठ हैं।

2. **श्री पंचदशी** – लेखक स्वामी विद्यानंद जी स्वामी निश्चलदास जी दाऊद पंथी ने 'विचार सागर' इसी के आधार पर लिखा है। यह पुस्तक भी दो भागों में है। भूमिका में महर्षि जी ने लिखा है। :

"मैंने देखा कि 'हिंदी विचार सागर' आम लोगों की समझ से बाहर है। इसलिए उसके आधार पर उर्दू में 'विचार कल्पद्रुम' लिखा। फिर 'वेदांत कल्पद्रुम', 'ब्रह्म विचार कल्पद्रुम', 'उत्तम विचार कल्पद्रुम' पुस्तकों की रचना की।"

'पंचदशी' के अनुवाद के बारे में कहा है कि :

3. **राजयोग** अर्थात् अष्टांग योग से सम्बंधित आठ विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान और पातंजलि योग सूत्र टीका सहित – यह स्वामी विवेकानंद जी के 'राजयोग' पर आधारित है। इसमें पतंजलि के योग दर्शन और महर्षि व्यास के योगशास्त्र का उर्दू अनुवाद है।

व्याख्याएँ

अमरीका आदि देशों की यात्रा से वापस लौटने के बाद महर्षि शिवव्रत लाल जी के विचारों में काफ़ी परिपक्वता आ गई थी। उन्होंने अपने श्रद्धालुओं और अनुयायियों की शिक्षा-दीक्षा को अपने जीवन का ध्येय बना लिया था। इस ज़माने में उन्हें प्राचीन ग्रंथों की व्याख्याएँ भी करनी पड़ी थी। 'उपनिषद मैगजीन' में उन्होंने उपनिषदों के संदेश का अपनी दृष्टि से विवेचन किया, साथ ही उनके अनुवाद भी प्रकाशित किये और फिर उनकी व्याख्या की। इसी व्याख्या के दौरान उन्होंने कठिन पारिभाषिक शब्दों का एक कोश भी तैयार किया। इस प्रकार शैक्षिक दृष्टि से इस पत्रिका ने महर्षि जी की सर्जनात्मक प्रतिभा के विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। अपनी असाधारण क्षमताओं का उन्हें स्वयं अहसास था। इसलिए एक जगह उन्होंने लिखा है कि :

"शिक्षा हमारे मनस्पटल पर शिलालेख की तरह ऐसे अंकित हो जाये कि फिर किसी के मिटाये न मिटे। मेरे लेखन का मूल उद्देश्य यही है और मैं इसी दृष्टि से उर्दू विद्वानों के दायित्व को अपने ऊपर ले रहा हूँ।"[128]

इस गहन निष्ठा और पवित्र उद्देश्य के साथ महर्षि जी ने व्याख्याओं की दिशा में क़दम उठाया और अनेक पुस्तकें लिखी हैं। कुछ इस प्रकार हैं :

1. संत संजोग – दूसरा खंड – इसमें परम संत कबीर साहब के एक दोहे की व्याख्या में छः दिन तक संतों के साधना मार्ग की वास्तविकता का वर्णन किया गया है। यह पुस्तक 11 दिसम्बर, 1921 ई. में बनारस में पूरी हुई थी।

2. शब्द प्रसंग या पोथी सार-वचन – इसमें राधास्वामी नज़्म के शब्दों की सविस्तार व्याख्या की है। इसमें कुल 270 पृष्ठ हैं।

सुमरन ध्यान भजन की विस्तृत व्याख्या, गायंत्री मंत्र व्याख्या सहित और चौथा पद आदि भी इसी प्रकार की पुस्तकें हैं।

कोश

जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों से अनुमान किया जा सकता है, महर्षि जी ने अपनी कई पुस्तकों के अंत में शब्दार्थ-सूची सम्मिलित की हैं जैसे कि 'शब्द-सार' के अंत में छः पृष्ठों की शब्दार्थ सूची है जिसके बारे में लिखा है :

"फ़रहंग-ए-शब्द सार – मुश्किल संस्कृत और पूर्वी अल्फ़ाज़ जो शब्द सार में आये हैं, उनका आम फ़हम तर्जुमा।"

इसी प्रकार 'नया भगतमाल' के अंत में सोलह पृष्ठों का परिशिष्ट है जिसमें संस्कृत के कई पारिभाषिक शब्दों के अर्थ दिये हुए हैं।

यदि इस प्रकार के सभी कोशों को एकत्रित कर लिया जाये तो यह एक बड़ी साहित्यिक सेवा होगी।

विभिन्न पुस्तकों के अंत में जो शब्दार्थ सूचियाँ दी गईं हैं उनके अतिरिक्त महर्षि जी ने पुस्तक के रूप में भी कुछ शब्द-कोश तैयार किये हैं। 'कबीर गूढ़ शब्द व्याख्या' भी उनमें से एक है जिसकी चर्चा की जा चुकी है।

विविध शैक्षिक पुस्तकें

महर्षि जी ने विशुद्ध शैक्षिक विषयों पर भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। इनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :

1. **मख़्ज़न-ए-इम्साल**[1] – महर्षि जी को उर्दू की लोकोक्तियों के बारे में असाधारण जानकारी थी। वे आमतौर पर अपनी पुस्तकों में लोकोक्तियों का भरपूर प्रयोग करते थे और उन्हें रोचक और बोधगम्य बना देते थे। उन्होंने लोकोक्तियों के मूल में निहित कथाओं को एकत्रित करके 'मख़्ज़न–ए–इम्साल' नामक पुस्तक तैयार की। इस लेखक ने यह संग्रह मुंशी गौरी शंकरलाल अख़्तर की भूमिका के साथ तीमाही उर्दू, कराची से प्रकाशित करा दिया है।

---

1. लोकोक्ति-भंडार

2. क़दीम आर्यों में इल्मे-तहरीर का रिवाज – यह एक लघु पुस्तिका है जिसे महर्षि जी ने 1902 ई. में सम्पादित किया था। लेखन कला से सम्बंधित भारत की समस्त आधुनिक भाषाओं में यही एकमात्र पुस्तक है। इस पुस्तक को भी इस लेखक ने विस्तृत टिप्पणियों के साथ मुजल्ला नुक़ूश, लाहौर में छपवा दिया है मालूम होता है कि समय के साथ-साथ लेखन कला विषयक महर्षि जी के दृष्टिकोण में परिवर्तन आने लगा था। इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है।

इसके अतिरिक्त महर्षि जी की अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं :

ज़ाहिरी व बातिनी मौसी क़ी[1], मा, दन-ए-तहज़ीब[2], आर्यावर्त व यूनानी फ़िलासफ़ी, संस्कृत ज़बान की अज़्मत, सांख्य फ़िलासफ़ी।

वचन, पत्र आदि

महर्षि जी ने अपने देश के भीतर और दूसरे देशों की अनेक यात्राएं की थीं। उनके आत्मीय जनों और श्रद्धालुओं में विभिन्न वर्गों और रुचियों के लोग शामिल थे। उनके बीच जो पत्र व्यवहार हुआ था, वह अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यह हर्ष की बात है कि श्रद्धालुओं ने उनके पत्रों, संदेशों और वचनों को प्रकाशित करा दिया है।

शायरी

डॉ. वर्मन महर्षि जी के विशिष्ट श्रद्धालुओं में से थे। उन्होंने 'नग़्मा-ए-यज़दानी' शीर्षक से महर्षि जी के आख़िर ज़माने के कलाम को प्रकाशित कराया है। भूमिका में लिखा है :

"हुज़ूर मुअल्ला व मुक़द्दस ने जो शे'र ओ-सुखन फ़रमाये हैं, वे इस कदर आसान हैं कि मामूली साहित्यिक समझ रखने वाला पाठक भी इन्हें पढ़कर आनंदित हो सकता है। मुद्दत से यह ख़्याल दिल में था कि आपके बिखरे हुए कलाम को एक जगह जमा किया जाये। हुज़ूर वालाशान ने उर्दू ज़बान में हज़ारों नज़्में और ग़ज़लें व हिंदी में हज़ारों शब्द कहे हैं। आप शायरों के उस्ताद थे। सैकड़ों शायरी का शौक़ रखने वाले प्रेमियों को उनकी रुचि और योग्यतानुसार उनके तख़ल्लुस के साथ ग़ज़लें लिखकर तबर्रुक के रूप में दे दिया करते थे। 1934 ई. में हनमकुंडा में एक मुसलमान सूफ़ी आपकी शोहरत और अज़्मत सुनकर पहुँचे। आपने फ़रमाया हम तुम्हारे ज़ब्त और नफ़स से खुश हुए। हमने तुम्हारा तखल्लुख भी 'ज़ाबित' रखा और 'ज़ाबित' तख़ल्लुस का जो कलाम 'गुलदस्ता-ए-हिज़ा' में है, उन्हें दे दिया।"

---

1. बाह्य तथा आंतरिक संगीत
2. संस्कृति की खान

लेकिन कुबेरनाथ श्रीवास्तव का कहना है कि :

"आपमें ज़ब्त का माद्दा बहुत था। यही वजह है कि आपकी ग़ज़लों में 'ज़ाबित' तखल्लुख भी पाया जाता है। आप बला के मेहनती और जुझारू थे।"[129]

सौमित्र कुमार जी का भी कहना है कि उनका तख़ल्लुस 'ज़ाबित' था और इस तख़ल्लुस से उनका जो कलाम था, वह उन्होंने किसी को नहीं दिया।"

महर्षि जी का एक तख़ल्लुस 'पीर-ए-मुगाँ' भी था लेकिन इस तख़ल्लुस से जो कुछ कलाम था, वह उन्होंने पंडित बुआ दत्त जी को दे दिया था। इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है।

महर्षि जी ने रिवायती ग़ज़लें नहीं कहीं लेकिन जब कहने की मनःस्थिति बनती थी तो ज़बान से सीधे शे'र ही निकलते थे। उनके कलाम में नज़्में, ग़ज़लें भी हैं और उन्होंने उन काव्य-विधाओं में भी शायरी की है जो आज विस्मृत कर दी गई हैं। जैसे कुंडली, शब्द, भजन और दोहे आदि। उन्होंने कभी-कभी अपने आत्मीयजनों को पद्य-बद्ध पत्र भी लिखे थे। अधिकांश पुस्तकों के आदि या अंत में उन्होंने अपनी नज़्में भी शामिल की हैं। उदाहरणार्थ :

1. नज़ायर-ए-कानून-ए-रूहानी के पहले भाग में पृष्ठ 8 से 66 तक जो पद्य रचनाएँ हैं उनके बारे में बताया गया है कि :

"इसमें जो ग़ज़लें आई हैं वे सब नई और क़लम बर्दाश्ता हैं।[1]

2. परमार्थ सुधार या ज़िंदगी का मक़सद – इस पुस्तक के आदि और अंत में कुंडलियाँ हैं। पृष्ठ 94 से 98 तक पूर्वी शैली में 'शब्द चेतावनी' दी गई है। इस प्रकार के बिखरे हुए कलाम के अतिरिक्त महर्षि जी के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से कुछ संग्रहों की चर्चा की जा चुकी है। कुछ का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

3. शब्द गुंजार अर्थात् ईश्वरीय और आध्यात्मिक रचनाओं का प्रभावशाली और रोचक संग्रह – भाग एक और दो, सम्पादक नंदू भाई। इसकी भूमिका में लिखा है :

"ऐसे हज़ारों की संख्या में शब्द मौजूद हैं। यदि सत्संगियों की इच्छा हुई तो और भी संग्रह तैयार किये जा सकते हैं।"

4. नंदू भाई की साखी या 'ज्ञानवर्द्धक दोहे' की चर्चा हो चुकी है। इसके बारे में नंदू भाई ने बताया है कि ये दोहे कभी पत्र में भेजे गये थे और ये कभी यों ही लिखे गये थे। 'साधु', 'विज्ञानी', 'संत संदेश' आदि में महर्षि जी के जो दोहे

---

1 लेखनी की नोक पर स्थित, स्वाभाविक

प्रकाशित होते थे, वे इस संग्रह में शामिल हैं। लेकिन 'संत' नामक हिंदी पुस्तक में जो दोहे हैं, वे इसमें शामिल नहीं किये गये हैं।

5. दिलचस्प नज़्मों का मज्मूआ
6. रिसाला सुमरन
7. ध्यान भजन और
8. भजन विलास आदि।

नंदू भाई द्वारा सम्पादित 'मक्तूबात-ए-महर्षि' में महर्षि जी के कुछ पद्य-बद्ध पत्र भी सम्मिलित हैं।

अप्रकाशित रचनाएँ

महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन जैसे प्रचुर मात्रा में लेखन कार्य करने वाले व्यक्ति की कुछ रचनाएं यदि अप्रकाशित रह गई हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। उनके ठाकुर नंदू सिंह, पंडित फ़कीर चंद, मोती लाल मुख़्तार, मुंशी गौरी शंकर अख़्तर और मोहन लाल नैयर आदि श्रद्धालुओं ने यथासम्भव उनकी रचनाओं की खोज-बीन की है और उन्हें सम्पादित किया है। कुछेक को पत्रिकाओं में तथा अधिकांश को पुस्तकाकार प्रकाशित करा दिया है। इसके बावजूद इसमें कोई संदेह नहीं कि रचनाओं के रूप में उनकी ऐसी बहुत सी पूंजी होगी जो किसी साहित्य प्रेमी के पास सुरक्षित होगी और जो अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकी होगी।

सौमित्र कुमार जी की श्रद्धा और साहित्याभिरुचि सचमुच में प्रेरणास्पद है, उन्होंने प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त छोटे-छोटे मसौदे और रुक्के भी निहायत सुरक्षा के साथ रख छोड़े हैं। उनमें से 'मख्ज़न-ए-इमसाल' को उनकी अनुमति से इस लेखक ने प्रकाशित करा दिया है। उनके पास जो निधि सुरक्षित है, उसमें कुछ उल्लेखनीय रचनाएं हैं –

1. क़िस्से – महर्षि जी के हस्तलेख में।

ठेठ देहाती तिलंगियों के क़िस्से, सास की सेवा का फल, सच्ची औरत, अक़्लिया लड़की, ग़लत इश्क़, ख़ैरात का फल, नुजूम और मर्दुमशुमारी की बुनियाद, हकीकत नम्बर दो, जिसकी लाठी उसकी भैंस, एक वेदांती, ईदा की रानी।

2. ड्रामा – महर्षि जी के हस्तलेख में – 12 अक्टूबर, 1934 ई. को बेगम पेठ में इसकी रचना हुई। सलामी, वफ़ादारी, अयाज़-ओ-मेहमूद, 1934 ई.। क़िस्सा-कहानी पहला भाग, 15 अध्याय। मुख पृष्ठ पर यह इबारत है– "मुसन्निफ़ा, मुजदिद्दा व मुरत्तिबा मुंशी गौरी शंकर लाल अख़्तर, रईसज़ादा, कशनी मुल्क अवध।" यह फुलस्केप साइज़ के 14 पृष्ठों में है।[130]

एक तारा देवी नामक महिला महर्षि जी की श्रद्धालु थीं। वे सत्संगियों के भोजन आदि का प्रबंध किया करती थीं। वे महर्षि जी के शब्दों का सस्वर पाठ करती थीं। उनके लिए भी महर्षि जी ने बहुत सी नज़्में लिखीं। इन नज़्मों के मसौदे मौजूद हैं, जैसे :

3. ख़ुदा हाज़िर और नाज़िर है – महर्षि जी के क़लम से धाम में लिखा गया, तारा देवी हैदराबाद के नाम से।

4. नज़्में महर्षि जी की क़लम से।

(अ) तवील नज़्म – क्या कहते हो मेरे लिए।
(आ) नज़्म – मैं उस चोटी पर बैठा हूँ जो सबसे ऊँची चोटी है।
(इ) नज़्म – औरत
(ई) एक तवील नज़्म
(उ) एक तवील नज़्म – 25 बंद की।
(ऊ) एक सवाल का जवाब – 25 बंद में।

5. नज़्में जो तारा देवी के नाम से लिखी गई हैं – महर्षि जी की क़लम से।

(अ) खुदा देखता है, खुदा देखता है – तवील नज़्म।
(आ) नज़्म तबाज़ाद श्रीमती तारादेवी।
(इ) तारा देवी के तख़य्युलात।

6. (अ) एक लोरी – अख़्तर साहब के नाम
(आ) एक नज़्म
(इ) एक तवील नज़्म – 17 जून, 1904 ई.।

सोलह

अंग्रेज़ी-लेखन

महर्षि जी स्वभाव से बड़े विनम्र थे। उन्होंने एक जापानी महिला सुजूकी ब्यात्रस को एक पत्र में लिखा था :

"मैं अंग्रेज़ी में किताबें कम लिखता हूँ मगर चूँकि तुम्हारे ख़त अंग्रेज़ी में आते हैं, उसी ज़बान में अपने ख़यालों का इज़हार करने की ज़रूरत महसूस होती है।"[131]

उस महिला से वे अंग्रेज़ी में पत्र व्यवहार करते थे। इस बात से यह सिद्ध होता है कि महर्षि जी को अंग्रेज़ी भाषा पर अच्छा अधिकार था। और इस भाषा में वे अपने अंतःकरण को पूरे आत्म विश्वास के साथ अभिव्यक्त कर सकते थे। यह सच है कि अपनी भाषा से उन्हें जो प्रेम था, वह उन्हें दूसरी भाषाओं की ओर आकृष्ट नहीं होने देता था। इसके बावजूद उन्होंने अपनी आवश्यकतानुसार आधे दर्जन से अधिक पुस्तकें अंग्रेज़ी में लिखीं और सम्पादित कीं। अपने मत और विचारों का प्रकाशन इनकी रचना का उद्देश्य था। कुछ इस प्रकार हैं :

1. **लाइट ऑन आनंद योग** – इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि आनंद योग ही सुखमय जीवन का रहस्य है और यही सुखों के द्वार खोलता है और उनके मार्ग को प्रशस्त करता है। यह पुस्तक पहली बार संत वाणी आश्रम, सेन बोर्नटन, हैमशायर, फ्रेंकलिन (अमरीका) से प्रकाशित हुई थी। भारत में इसका संस्करण दिसम्बर 1931 में मल्होत्रा प्रिंटिंग प्रेस, लाहौर से प्रकाशित हुआ। इसमें 231 पृष्ठ हैं।

2. **शब्द योग** – इसमें यह बहस की गई है कि दुःख सुख की वास्तविक खोज बाह्य संसार में नहीं, अपनी आत्मा में करना चाहिए। निन्यानवे पृष्ठों की यह पुस्तक 1918 ई. में मिसेज गोल्ड मेरी प्रेस, झेलम में मुद्रित हुई।

3. **एंट्री इन टू किंगडम ऑफ़ हैवन ऑन अर्थ** – यह पुस्तक पहली बार राधास्वामी धाम, गोपीगंज से प्रकाशित हुई।

4. **मैसेज ऑफ़ पीस** – यह ग्यारह वचनों का संग्रह है और 1933 ई. राधास्वामी धाम, गोपीगंज से प्रकाशित हुआ।

पुस्तकों के अतिरिक्त महर्षि जी ने अंग्रेज़ी की पत्र-पत्रिकाओं में अपने लेख प्रकाशित कराये। एक जगह लिखा है :

"यह मेरी अपनी ज़िंदगी में भूत देखने की पहली घटना है। मैंने इसे 1905 ई. में कलकत्ते की प्रतिष्ठित अंग्रेज़ी पत्रिका 'इस्पिरिचुअल मैगज़ीन' में प्रकाशित करा दिया था ताकि कोई साहब इसकी विश्वसनीय व्याख्या कर दें।"[132]

पंजाबी-लेखन

महर्षि जी के जीवन का बड़ा हिस्सा लाहौर आदि मुक़ामों पर पंजाब में व्यतीत हुआ था। वे बड़े ही प्रबुद्ध व्यक्ति थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने पंजाबी भाषा सीख ली थी और इस भाषा में एक 'पंजाबी सूरमा' नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया था। खेद है कि वह पत्रिका उपलब्ध नहीं हो सकी। इसलिए पंजाबी भाषा में उनके कृतित्व का विवरण ज्ञात नहीं हो सका।

तेलुगू-लेखन

महर्षि जी एक समय तक आंध्र प्रदेश के इलाक़ों में भी रहे थे। अपने शैक्षिक और समाज सुधार सम्बन्धी कार्यक्रम चलाने के लिए उन्हें तेलुगू भाषा में भी अपनी पहुँच बनानी पड़ी थी। सौमित्र कुमार जी से मिली सूचना के अनुसार 'शाही लकड़हारा' और 'शाही पति परायण' का तेलुगू भाषा में अनुवाद हो चुका था। इनमें से दूसरी पुस्तक काफ़ी चर्चित हुई। अतएव 1988 ई. में इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ है। इसमें 152 पृष्ठ हैं। विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता कि स्वयं महर्षि जी ने भी इस भाषा में कोई लेखन कार्य किया है या नहीं ?

दाता दयाल जी की कृतियों के विषय में बाबा सावन सिंह जी आचार्य व्यास अक्सर कहा करते थे कि :

"महर्षि व्यास जी ने तो केवल चार वेदों को ही संग्रहीत किया है। हमारे महर्षि जी ने जनसाधारण के कल्याण हेतु हज़ारों पुस्तकों की रचना की है, जो हर दृष्टि से पवित्र और उच्च कोटि की रचनाएं हैं ताकि सत्य के जिज्ञासु और संत मत के अनुयायी एवं प्रचारक उनसे लाभान्वित हो सकें।"[133]

सतरह

नारा

अमरीका आदि दूसरे देशों की यात्रा से वापस लौटने के बाद महर्षि जी ने दो नारे बुलंद किये थे :

इंसान बनो और इंसानियत का परचम लहराओ। उनका कहना था कि हर तरह और तमाम मामलों में मुकम्मल इंसान बन जाओ –

"Be man entire and whole and in every thing."

धर्म

महर्षि जी का धर्म 'संत मत' या मज़हब-ए-फुक्रा[1] है और इसके बारे में ठाकुर नंदू सिंह ने लिखा है कि :

"संत मत दयाल मत है। दयाल मत पूर्णतः संत मत है। प्रेम एक भाव है जो मनुष्य को सर्वस्व त्यागने के लिए तैयार करता है। प्रेम के मार्ग में लेने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता, हमेशा त्याग का भाव रहता है। प्रेम दुकानदारी नहीं है, यह मत किताबी नहीं है और न यह किसी धर्म ग्रंथ पर आधारित है। कलियुग में संत मत का प्रचार ज़ोरों से होता है। जब मनुष्य की भौतिक आवश्यकताएँ इतनी बढ़ जाती हैं कि वह स्वयं को एक वस्तु का दास बना लेता है। मनुष्य, मनुष्य का ही दास बन जाता है। सबसे पहले कबीर साहब का आगमन हुआ जो संत मत में बहुत श्रद्धास्पद समझे जाते हैं और 'आदि संत' कहलाते हैं। उन्होंने ईश्वर के एकत्व का वह मार्ग दिखाया जो करोड़ों लोगों को अनुकरणीय प्रतीत हुआ। वे स्वयं जीवन भर समता और अभेद का शंखनाद करते रहे। महर्षि शिवव्रत लाल महाराज ने संतमत के यत्र-तत्र बिखरे हुए समस्त साहित्य को एक स्थान पर एकत्र करके उसे पूर्णता प्रदान की।"[134]

महर्षि जी एक निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। सभी मनुष्य एक विधाता की सृष्टि हैं इसलिए वे किसी प्रकार का भेद पसंद नहीं करते थे। उन्होंने बार-बार कहा है कि धार्मिक पक्षपात, भेदभाव और हठधर्मी से हमारा सम्बन्ध नहीं है। उनकी मान्यता है कि :

---

1. फ़क़ीरों का मज़हब

"मनुष्य विधाता की सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है। वह आराध्य देवी-देवताओं से भी कहीं बड़ा है। मनुष्य में प्रकृति से ही सारी विशेषताएँ मौजूद हैं। केवल एक प्रेरणा की ज़रूरत होती है। इसी प्रेरणा का नाम शिक्षा है जिसकी उसे अपेक्षा है। जब यह बात सभी मूर्त विद्याओं के विषय में सच प्रतीत होती है तो अध्यात्म-विद्या और ब्रह्म-ज्ञान के विषय में भी उतनी ही सच है। धर्म, ईश्वर और गुरू के सम्बन्ध संसार से उस समय तक समाप्त नहीं हो सकते जब तक मनुष्य, मनुष्य है। वेद मौजूद थे, उपनिषद मौजूद थे, पुस्तकालय भरे पड़े थे लेकिन क्या कभी किसी को पुस्तकीय ज्ञान से आत्म-संतुष्टि हुई ? बौद्धिक प्रगति में ज़रूर पुस्तकों से सहायता मिली लेकिन अंतरात्मा को इससे कुछ लाभ नहीं हुआ। आत्मा केवल आत्मा से लाभान्वित होती है, पुस्तकों से नहीं।"[135]

महर्षि जी के दो सौ से अधिक कथन 'गुलिस्तान-ए-हजार रंग' में (पृष्ठ 227 से 246 तक) संग्रहीत कर दिये गये हैं जिनके अवलोकन से उनके पंथ के बारे में भलीभाँति अनुमान किया जा सकता है।

शिक्षाएँ

अपने पंथ के अनुसार महर्षि जी जीवन भर श्रद्धालुओं की शिक्षा-दीक्षा में व्यस्त रहे उनकी शिक्षाओं का ख़ुलासा इस प्रकार है :

"कोई शिव का उपासक है तो कोई विष्णु और शक्ति का, तो कोई गणेश और ब्रह्मा का। इनमें सच्चे मालिक की पहचान किसी को भी नहीं है।

धर्म भी मात्र औपचारिक शिष्टाचार और कर्मकांड बनकर रह गये हैं। धार्मिक विधि-निषेध मनुष्य के चित्र को भ्रमित कर देते हैं।

जो किसी धर्म ग्रंथ को पूजते हैं, वे भी मूर्तिपूजक हैं और जो आशय समझे बिना किसी पुस्तक का अध्ययन करते हैं, वे भी मूर्ति पूजक हैं।

ज़िंदगी का सफ़र अकेले तमाम नहीं होता। तुम और मुसाफ़िरों के साथ मिल-जुलकर इस सफ़र को तय करो।

कर्म के अभाव में ज्ञान निरर्थक है और कर्म के भाव में ज्ञान सार्थक है।

'अहिंसा परमो धर्मः' संतों का मार्ग है।

आकाश पर वास्तविक परमब्रह्म है और धरती पर उसकी मिथ्या छाया है। राधा स्वामी मत प्रगति का मार्ग है। वह आवाहन करता है कि एक स्थान पर मत ठहरो, अन्यथा काम न बनेगा। चले चलो।"[136]

उर्दू के महान शायर 'इक़बाल' का नारा भी यही है कि –

तू इसे पैमाना-ए-इम्रोज़-ओ-फ़र्दा से नाप,
जाविदाँ[2] पैहम[3] दवाँ[4] हरदम जवाँ है ज़िंदगी।

यह स्मरण रहे कि 'इक़बाल' और महर्षि शिवव्रत लाल समकालीन थे और दोनों ने अपनी उम्र का बड़ा हिस्सा एक ही शहर यानी लाहौर में गुज़ारा था।

अठारह

टिप्पणियाँ

1. जाँ निसार मोती, पृष्ठ 2

   कायस्थों के मूल के विषय में मतभेद है। उन्हें कभी ब्राह्मण और कभी क्षत्रिय सिद्ध किया गया है। बीसवीं सदी ईसवी के आरम्भ में यह मामला अदालत में भी गया था और उन्हें क्षत्रिय माना गया था। महर्षि जी ने अपने दादा की ज़बान से नक़ल किया है कि, "मैं क्षत्रिय हूँ। (कोशतकी ब्राह्मण, पृष्ठ 61) बादशाह द्वारा उन्हें ठाकुर की उपाधि देना तथ्य के अनुकूल था।

2. ब्राह्मण कौम की बेवा औरतें – मार्तण्ड, जून, 1910 ई.
3. कोशतकी ब्राह्मण, पृष्ठ 61
4. स्पष्ट रूप से यह सम्वाद काल्पनिक है। प्रसंगवश इसमें यह उल्लेख कर दिया गया है कि हमीराज की स्मृति स्वरूप एक टीला मौजूद है, जिस पर वे रहते थे।
5. ठाकुर नंदू सिंह ने उनके पिता का नाम भिन्न बताया है। उनके शब्द ये हैं :

   "आपके (महर्षि जी) के दादा बुजुर्गवार मुंशी केवल किशोर साहब, वकील सरकार महाराज बनारस थे।" (गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 51) और कुवेरनाथ श्रीवास्तव जी ने ख़ुद उनका नाम श्री सम्पत लाल लिखा है। (वही पृष्ठ 23)

6. वही, पृष्ठ 70
7. वही, पृष्ठ 51
8. मान सरोवर, फ़रवरी 1941 ई. पृष्ठ 38

   लेकिन श्री अमरनाथ जी का कथन है कि "17 फ़रवरी को शिवरात्रि और उनका जन्मदिन था। उत्सव मनाया गया। यह सतहत्तरवीं वर्षगाँठ थी। (वही पृष्ठ 56) सौमित्र कुमार जी ने सूचना दी है कि वे शिवव्रत लाल की जन्मकुंडली को खोज रहे हैं।

9. अद्भुत संदेश, पृष्ठ 64
10. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 63
11. वही, पृष्ठ 36

12. वही, पृष्ठ 35
13. वही, पृष्ठ 23
14. परलोक सुधार, पृष्ठ 83 से 84 तक
15. वही, पृष्ठ 24
16. वही, पृष्ठ 54
17. साधु, अप्रैल 1911, पृष्ठ 122
18. सफ़रनामा; साधु, फ़रवरी – मार्च, 1912 ई. पृष्ठ 226
19. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 70
20. वही, पृष्ठ 24 – खुद महर्षि जी का कहना है कि मैंने 1888 ई. में कालेज छोड़ा। इस आधार पर उनके एंट्रेंस पास करने के वर्ष का अनुमान किया गया है।
21. वह ज़मींदार घराना था। फिर सौमित्र कुमार जी के अनुसार महर्षि जी को लोग जन्मजात सिद्ध पुरुष मानते थे। श्रद्धालु उन्हें महाराज तथा उनकी पत्नी को महारानी कहते थे।
22. सौमित्र कुमार जी के अनुसार – 'हमारी माताएँ' में 30 सितम्बर, 1904 ई. (पृष्ठ 31) और 'दयाल जोग' में, 1901 ई. (जीम अलिफ़ पृष्ठ 35)
23. मार्तण्ड, मई 1917, पृष्ठ 38
24. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 91 तथा 'हमारी माताएँ' पृष्ठ 12-13
25. टीचर शब्द इस बात की दलील है कि वे किसी स्कूल के अध्यापक होंगे लेकिन उस ज़माने में गाँव में ऐसा स्कूल कहाँ हो सकता था। अनुमान है कि ये साहब रिटायर्ड होंगे और उनके पूर्व व्यवसाय के कारण 'टीचर' शब्द उनके नाम का अंग बन गया होगा।
26. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 24
27. ज़बान, देहली, अंक 2-3 1911 ई. पृष्ठ 99
28. शिवव्रत लाल ने, जैसे-जैसे ज़रूरत मेहसूस हुई, कई भाषाएँ और विद्याएँ सीखीं। लिखते हैं :

    "मुझे विद्यार्थियों की भाँति गुरू ग्रंथ साहब का अध्ययन करना पड़ा। अब इस योग्य हुआ हूँ कि इसकी व्याख्या की ओर ध्यान दूँ।"

    और,

"मैंने इस वृद्धावस्था में सितार का शौक़ किया। पहले चूँकि फ़ारसी दाँ लोगों के बीच मेरा पालन पोषण हुआ था, इस कारण संगीत को लेकर ग़लत विचार थे। अब फ़क़ीरों के सत्संग से उसके कमाल की समझ आई। (सुख-सुधार, पृष्ठ 79)

29. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 25
30-31. वही, पृष्ठ 51
32. वही, पृष्ठ 43
33. वही, पृष्ठ 25
34. वही, पृष्ठ 69-70
35. सत्संगत, मई 1935, पृष्ठ 35
36. आख़िर सत्संग के आखिरी वचन, पृष्ठ 85
37. यह अजब बात है कि हम अमूमन, मजहबी मामलों में, ऐसे लोगों की रहबरी कुबूल कर लेते हैं।
38. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 68
39. परम संदेश, पृष्ठ 102
40. यह दरख़्वास्त अंग्रेज़ी भाषा में थी। इसका ज़ीरोक्स सौमित्र कुमार जी ने उपलब्ध कराया है। इस हेतु लेखक उनका आभारी है।
41. अद्भुत उपासना योग, पृष्ठ 11
42. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 34
43. स्वामी दयानंद सरस्वती जी महाराज, पृष्ठ 10
44. ज़माना, जून, 1939, पृष्ठ 403
45. दयाल जोग, भाग एक, पृष्ठ 249
46. इस रिसाले को लेखक ने परिचय और टिप्पणियों के साथ 'मुजल्ला नुकूश' लाहौर के वार्षिकांक 1989 ई. (अंक 138) में प्रकाशित कराया है।
47. राय सालगराम साहब, पृष्ठ 8
48. दयाल जोग – भाग एक, पृष्ठ 35
49. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 68
50. तक़्रीज़ ख़ुम्ख़ाना-ए-जावेद, जिल्द-दो, पृष्ठ 26 आदि
51. सार संदेश, दीबाचा, पृष्ठ 7 – इतनी बात सही है कि हिंदुओं से सम्बन्धित जो साहित्य उर्दू में पहले से मौजूद था, वह बहुत हद तक विशृंखल था। इसका एक कारण यह भी हो सकता कि इस साहित्य की रचना में मुसलमान भी बराबर के भागीदार थे। मिसाल के तोर पर उपनिषदों को पहली बार दाराशिकोह ने 'सिर्रे-अकबर' नाम से फ़ारसी में प्रस्तुत किया था। उर्दू में इसका अनुवाद अबुल-हसन नामक एक व्यक्ति ने किया था। इसी प्रकार हिंदू धर्म के अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भी महर्षि शिवव्रत लाल से पूर्व उर्दू में रूपांतरित हो चुके थे।
52. शाही लकड़हारा, भूमिका, पृष्ठ 5
53. मान सरोवर, दिसम्बर, 1903 ई.

54. यह दावा सही नहीं है। महाशय शिव के रिसालों से बहुत पहले भी उर्दू में ऐसे कई रिसाले और अख़बार छपे थे। उदाहरण के लिए 'विज्ञानी पत्रिका' लाहौर से जून, 1865 में जारी हुई। 'हिंदू प्रकाश' अमृतसर से नवम्बर 1873 ई. में और 'हिंदू बांधव' लाहौर से अप्रैल 1875 ई. में निकले। इसके बाद तो ऐसी असंख्य पत्र-पत्रिकाएं निकलने लगीं।
55. नानक जोग, भूमिका पृष्ठ 10 से 12 तक
56. यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। भारत में आर्यों के अतिरिक्त द्रविड़, दक्षिणात्य आदि विभिन्न जातियाँ निवास करती हैं। केवल आर्यों का उल्लेख करने का साफ़ मतलब यह है कि उन जातियों को हिंदुओं की परिधि से बाहर कर दिया गया। महाशय शिव ने इस ख़तरनाक प्रवृत्ति को रोकने के सराहनीय प्रयास किये।
57. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 52
58. वही पृष्ठ 68
59. श्रीमद्भगवदगीता – भाग एक, पृष्ठ 7
60. दयाल जोग – भाग एक 53
61. राधा स्वामी मत की फ़ज़ीलत, पृष्ठ 6
62. मूर्तिपूजा, 'विज्ञानी' दिसम्बर 1918, पृष्ठ 183
63. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 68
64. ज़माना, जून 1939, पृष्ठ 403
65. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 86
66. वही, पृष्ठ 34
67. शिव शम्भू, अगस्त-सितम्बर, 1918
और अद्भुत उपासना योग, पृष्ठ 18-19
68. मार्तण्ड, अक्टूबर, 1910, पृष्ठ 14
69. वही, जुलाई, 1910, पृष्ठ 10
70. वही, जून, 1911, पृष्ठ 130
71. साधु, फ़रवरी-मार्च, 1912, पृष्ठ 240
72. वही, मई, 1912, पृष्ठ 93
73. साधु, मई 1912, पृष्ठ 101
74. वही, फरवरी-मार्च 1912, पृष्ठ 225
75. निज उपकार सुधार, पृष्ठ 43
76. पंथ संदेश, पृष्ठ 7-8
77. ज़माना, जून 1939, पृष्ठ 404
78. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 83

79. साधु, फरवरी-मार्च, 1912, पृष्ठ 224
80. मक्तूबात-ए-महर्षि, भाग 3, पृष्ठ 20
81. वही, पृष्ठ 10
82. शाही जादूगरनी, पृष्ठ 6
83. सुंदरी राधा रानी, पृष्ठ 3
84. आबदार मोती, पृष्ठ 14-15
85. शाही भिखारी, पृष्ठ 3
86. वज़ादार मोती, पृष्ठ 4
87. शिव शम्भू, नवम्बर, 1917 ई.
88. यह संख्या स्वयं महर्षि जी के पत्र 12 जुलाई, 1933 के अनुसार है। जिसमें उन्होंने यह स्वीकार किया है कि यह मैं महज़ याददाश्त से लिख रहा हूँ।
89. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 53
90. वही, पृष्ठ 63
91. वही, पृष्ठ 53
92. वृद्धि सुधार, पृष्ठ 78
93. हिंदू आदर्श, पृष्ठ 18
94. हुकूमत का राज, पृष्ठ 3
    अन्यत्र भी यह कहा गया है। अप्रैल 1923 में प्रकाशित 'संतमाल' के तीसरे परिशिष्ट में है कि राधा स्वामी धाम गोपीगंज की बुनियाद ठाकुर नंदूसिंह जी ने रखी है। यहाँ से दो किताबी सिलसिले याने उर्दू में 'संत समागम' और हिंदी में 'संत' जारी हुए हैं।
95. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 66
96. वही, पृष्ठ 53
97. दयाल जोग, पृष्ठ 40
98. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 13, 17, 19, 26, 32, 59 से 62 आदि।
99. जाँ निसार मोती, पृष्ठ 2-3
100. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 165
101. दयाल जोग, पृष्ठ 42
102. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 44
103. वही, पृष्ठ 22
104. दयाल जोग, पृष्ठ 44-45
105. परलोक सुधार, पृष्ठ 107
106. वही

107. ठाकुर नंदू सिंह का कहना है कि हिंदी, उर्दू, अंग्रेज़ी (गद्य एवं पद्य) में उन्होंने तीन हजार से भी अधिक पुस्तकों की रचना की। (दयाल जोग, पृष्ठ 47) मोतीलाल 'मुख़्तार' जी ने लिखा है कि उन्होंने दो हज़ार से अधिक पुस्तकों का लेखन-सम्पादन किया। (ज़माना, जून, 1939) एक विज्ञापन में 3509 संख्या बताई गई है। (इसरार-ए-कामयाबी) अलबत्ता ठाकुर नंदू सिंह ने ही फ़रमाया है कि पुस्तकों की संख्या पाँच हज़ार से अधिक है। कई भाषाओं में अनुवाद हुए हैं। (सार शब्द, पृष्ठ 8)
108. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 76 से 77 तक,
नज़ायर-ए-कानून-ए-रूहानी, भाग-एक, पृष्ठ 12-13
109. ज़माना, जून 1939
110. मुंडक उपनिषद, पृष्ठ 32
111. उपनिषद भाष्य भूमिका, पृष्ठ 12
112. मुंडक उपनिषद, पृष्ठ 2-3
113. छांदोग्य उपनिषद, पृष्ठ 12 से 15
114. कठोपनिषद, पृष्ठ 15
115. प्रश्नोपनिषद, पृष्ठ 71
116. तैत्तरीय उपनिषद, पृष्ठ 59
117. जैन वृत्तांत कल्पद्रुम, पृष्ठ 3
118. मांडूक्य उपनिषद पृष्ठ 3 – मांडूक्य कारिका की एक प्रति लाहौर में पंजाब यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय में मौजूद था। (कैटलाग जिल्द, पृष्ठ 33)
119. ज्ञान कल्पद्रुम, पृष्ठ 9
120. वाजसनेयी संहिता उपनिषद, पृष्ठ 3
121. सुंदरी राधा रानी, पृष्ठ 3
122. शिव शम्भू, नवम्बर 1917
123. हमारी माताएँ, पृष्ठ 3
124. हिंदी साहित्य कोश – भाग दो, पृष्ठ 301
इस पुस्तक की टीका 1712 ई. में प्रियदास ने की थी।
125. प्रियदास के बाद लाला लाल जी कायस्थ ने अनुवाद किया। फिर रोहतक निवासी लाला गुमानीलाल कायस्थ ने इसे फ़ारसी में रूपांतरित किया। यही अनुवाद महर्षि जी की पुस्तक का स्रोत है। 'संत' 1916 विक्रमी (1859 ईसवी तथा 1275 हिजरी) में महाराजा रघुराज सिंह ने इसका काव्यानुवाद किया था। (उर्दू भाग पृष्ठ 69)

126. दुनिया की बेहतरी – 'गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग' में रामकथा से सम्बन्धित अनेक पुस्तकों के अलावा महर्षि जी की एक दर्जन रामायणों के नाम लिखे हैं। इस सूची में निश्चय ही संशोधन की ज़रूरत है।
127. कबीर जोग – भाग 2 में विज्ञापन पंथ संदेश, पृष्ठ 7
128. कठोपनिषद, पृष्ठ 25
129. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 25
130. महर्षि जी की कुछ प्रकाशित पुस्तकों पर भी 'अख़्तर' साहब का नाम इसी तरह लिखा है।
131. मक्तूबात-ए-महर्षि – भाग दो, पृष्ठ 28
132. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, पृष्ठ 74
133. वही, 447
134. दयाल जोग, पृष्ठ 52 से 67
135. वही, पृष्ठ 70 से 75
136. वही, पृष्ठ 199 से 223।

उन्नीस

स्रोत

जिन पुस्तकों के साथ लेखक का नाम नहीं दिया है, वे सब महर्षि जी की रचनाएँ हैं।

(अ) पुस्तकें

1. आबदार मोती, वंदे मातरम् स्टीम प्रेस, लाहौर, 1925
2. आख़िरी सत्संग के आख़िरी वचन – सम्पादक मोती लाल मुख़्तार, प्रकाशक रफ़ा-ए-आम, गोरखपुर, अगस्त-सितम्बर 1939
3. उपनिषद भाष्य भूमिका, अमृतसर, अक्टूबर-नवम्बर 1926
4. अद्भुत संदेश, आर्य स्टीम प्रेस लाहौर, अक्टूबर 1914 तथा इसरार-ए-कामयाबी, मशमूला-ए-दयाल, हैदराबाद
5. इस्लाम के अलावा मज़ाहिब की तर्वीज में उर्दू का हिस्सा – डॉ. मुहम्मद अज़ीज़, अंजुमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू, अलीगढ़, 1955
6. वृद्धि सुधार, मैथ्यू डस्ट पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ
7. प्रश्नोपनिषद, अमृतसर, मार्च-अप्रैल 1927
8. परलोक सुधार, प्रकाश स्टीम प्रेस, लाहौर, 1920
9. पंथ संदेश, आर्य स्टीम प्रेस, लाहौर
10. तैत्तरीय उपनिषद, अमृतसर जनवरी-फरवरी, 1928
11. जाँ निसार मोती, जे. एस. संत सिंह एण्ड संज़, लाहौर
12. जैन वृत्तांत कल्पद्रुम, सेवक स्टीम प्रेस, लाहौर, 1977
13. छांदोग्य उपनिषद, इलाहाबाद, जनवरी से जून, 1929
14. हुकूमत का राज़, मल्होत्रा प्रिंटिंग कम्पनी, लाहौर
15. ख़ुम्ख़ाना-ए-जावेद (जिल्द-3 तक़्रीज़), लाला श्री राम
16. दयाल जोग, नंदू भाई, शिव साहित्य प्रकाशन मंडल, हैदराबाद, 1956
17. राधा स्वामी मत की फ़ज़ीलत, जनवरी 1932
18. राय शालगराम साहब, दिसम्बर 1934

19. सार संदेश, दिसम्बर 1914
20. सार शब्द (सम्पादित) नंदू भाई, मशमूला दयाल, हनमकुंडा, मार्च, 1963
21. संतमाल, बंदे मातरम स्टीम प्रेस, लाहौर, 1923
22. सुख सुधार, लाला स्टीम प्रेस, लाहौर, 1920
23. सुंदरी राधारानी, मशहूर-ए-आलम स्टीम प्रेस, लाहौर
24. स्वामी दयानंद सरस्वती जी महाराज, सलीमी बर्की प्रेस, इलाहाबाद, जुलाई-अक्टूबर, 1936
25. शाही भिखारी, लाला चम्पतराम एण्ड संज़, लाहौर, 1928
26. शाही जादूगरनी, विज्ञानी लाहौर
27. शाही लकड़हारा, आर्य स्टीम प्रेस, लाहौर
28. श्रीमद्‌भगवदगीता, सलीमी बर्क़ी प्रेस, इलाहाबाद
29. कद़ीम आर्यों में इल्म-ए-तहरीर का रिवाज, सत्य धर्म प्रचारक प्रेस, हरिद्वार, 1903
30. कबीर जोग, प्रकाश स्टीम प्रेस, लाहौर
31. कठोपनिषद, अमृतसर, मई-जून, 1927
32. कोशतकी ब्राह्मण उपनिषद, इलाहाबाद, अक्टूबर से दिसम्बर, 1928
33. कैटलाग ऑफ़ संस्कृत मैन्यूस्क्रिप्ट, पंजाब यूनिवर्सिटी, प्रथम खंड, 1932
34. गुलिस्तान-ए-हज़ार रंग, सारी दुनिया बुक डिपो, अमृतसर, 1964
35. ज्ञान कल्पद्रुम, आर्य स्टीम प्रेस, लाहौर
36. मांडूक्य उपनिषद; अमृतसर, नवम्बर-दिसम्बर, 1928
37. परम संदेश, आर्य स्टीम प्रेस, लाहौर
38. मक्तूबात-ए-महर्षि – भाग 2, मशमूला-ए-दयाल, हैदराबाद, अक्टूबर, 1957
39. मुंडक उपनिषद, अमृतसर, जुलाई-अगस्त, 1927
40. मूर्ति पूजा, मशमूला-ए-विज्ञानी, दिसम्बर, 1918
41. नानक जोग, पंजाबी स्टीम प्रेस, लाहौर
42. निज उपकार सुधार, लाल स्टीम प्रेस लाहौर
43. नज़ायर-ए-कानून-ए-रूहानी, भाग एक, 'सत्संग' मार्च-अप्रैल, 1932
44. वाजसनेयी संहिता उपनिषद, इलाहाबाद, जुलाई से सितम्बर, 1928
45. वज़ादार मोती, जे. एस. संत सिंह एण्ड संज़, लाहौर
46. हमारी माताएँ, प्रकाशक – लाजपतराय पृथ्वीराज साहनी, लाहौर

47. हिंदू आदर्श, मशमूला-ए-दयाल, हैदराबाद, जनवरी से मार्च 1947
48. हिंदी साहित्य कोश, भाग-2, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, 1986

(ब) पत्र-पत्रिकाएँ

1. माहनामा, ज़बान, देहली, अंक 2-3, 1911
2. माहनामा, ज़माना, कानपुर, जून, 1939
3. माहनामा साधु, लाहौर, अप्रैल 1911 तथा फरवरी-मार्च-मई, 1912
4. माहनामा सत्संग, गोपीगंज, मई 1925
5. माहनामा शिवशम्भू, लाहौर, नवम्बर 1917, अगस्त-सितम्बर, 1918
6. मार्तण्ड, लाहौर, जून, जुलाई, अक्टूबर 1910, जून 1911
7. मानसरोवर, लाहौर, दिसम्बर 1930, सम्पादक – गौरी शंकर लाल 'अख़्तर'
8. विज्ञानी, लाहौर, दिसम्बर 1918, सम्पादक – शिवव्रत लाल वर्मन

116042
17/11/2004

दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन संत मत के पहले प्रचारक थे। देश-विदेश की अनेक भाषाओं से परिचित होने के बावजूद उन्होंने अपने पंथ के प्रचार प्रसार हेतु उर्दू भाषा में *ज़माना, साधु, विज्ञानी* आदि डेढ़ दर्जन से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं और असंख्य पुस्तकें प्रकाशित कीं। शायरी और गद्य की नई-पुरानी लगभग हर विधा में अपनी यादगार छोड़ी और उर्दू भाषा को अनेक विषयों से समृद्ध किया। शिकागो विश्वविद्यालय ने 1899 ई. में उन्हें 'डॉक्टर आफ़ लाज़' की उपाधि से सम्मानित किया। प्रस्तुत पुस्तक में पहली बार दाता दयाल के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित कराने का विनम्र प्रयास किया गया है।

डॉ. मुहम्मद अंसारुल्लाह का जन्म 4 जनवरी, 1936 को अलीगढ़ में हुआ। पहला शोध-आलेख नियाज़ फ़तेहपुरी के 'निगार' में 1955 में प्रकाशित हुआ। क़ाज़ी अब्दुल वदूद साहब से शोध का मार्गदर्शन प्राप्त किया। चार सौ से अधिक शोध-आलेख तथा डेढ़ दर्जन से ज़्यादा शोध-कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। ऑल इंडिया मीर एकेडमी, लखनऊ से 'इम्तियाज़-ए-मीर' पुरस्कार प्राप्त किया तथा 'मोतमदुद्दौला आग़ा मीर' कृति पर बंगाल उर्दू एकेडमी, कलकत्ता से प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया है। आजकल उर्दू विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में रीडर के पद पर कार्यरत हैं।

ISBN 81-7201-842-8

Library IIAS, Shimla
H 819.092 V 59 A
00116042